९६४

संत त्यागराज

डा. इ. पाण्डुरंग राव

प्रकाशक :
तिरुमल तिरुपति देवस्थान,
तिरुपति।

56225

संत त्यागराज

डॉ. पांडुरंग राव

तिरुमल तिरुपति देवस्थानम्
तिरुपति

SANT TYĀGARĀJ

BY

PANDU RANGA RAO

T. T. Devasthanams.
T.T.D. Religious Publications Series No: 137

SRI VENKATESWARA CENTRAL LIBRARY & RESEARCH CENTRE.
Acc. No. 56225
Date ....
TIRUPATI.

Copies: [illegible],000

Published by:
Sri S. LAKSHMINARAYANA, I.A.S.
Executive Officer,
Tirumala Tirupati Devasthanams,
Tirupati

Printed at
Tirumala Tirupati Devasthanams Press,
Tirupati.

प्रकाशकीय

हमारा भारतीय साहित्य, चाहे वह प्राचीन हो या अर्वाचीन, उसका अवलोकन करने पर धार्मिक विचारों से उसका मेलजोल स्पष्ट परिलक्षित होता है। भक्ति और ज्ञान की अंतर्वाहिनी से युक्त साहिती गंगा विस्तार रूप से प्रवहित होती हुई, अंत में भगवान नामक सागर में लीन होती है।

वाग्गेयकार संत त्यागराज ने आंध्र प्रदेश की कीर्ति-सीमाओं का विस्तार किया। अन्नमय्या, क्षेत्रय्या, त्यागय्या, रामदास — ये मूर्धन्य संत हैं; पदकर्ता हैं; परम भक्त हैं। इन मनीषियों ने अपने गीतों के द्वारा भक्ति-ज्ञान-वैराग्य का प्रचार किया। नाद ब्रह्म की उपासना द्वारा वे स्वयं भव-सागर से तर गये और उन्होंने अन्यों को वह तरणोपाय दिखाया।

संत त्यागराज जन्मतः तेलुगु प्रांत के व्यक्ति थे। उन्होंने यहाँ पर जन्म लेकर, तमिल प्रांत में निवास किया। वे बडे संगीत-सम्राट रहे और कई अपने शिष्यों को संगीत-सुधा का वितरण किया। ऐसा कहने में अतिशयोक्ति न होगी कि तमिल व कन्नड प्रांतों में इनके एक न एक पद का आलाप न करनेवाला व्यक्ति कोई नहीं होगा।

संत त्यागराज ने भगवान बालाजी के दर्शन की उत्कट अभिलाषा प्रकट करते हुए "तेर तीयग रादा ...." नामक जो गीत गाया, वह खूब प्रसिद्ध है। इनके सभी कीर्तन भक्ति रस से ओतप्रोत हैं। इन सभी का अनुवाद भारतीय भाषाओं में होना चाहिए।

तिरुमल तिरुपति देवस्थान द्वारा हिन्दू धर्म के प्रचार के लिए किये जानेवाले कार्यक्रमों में धार्मिक ग्रंथों का प्रकाशन

अन्यतम है। धार्मिक ग्रंथों के प्रकाशन के लिए लेखकों को आर्थिक सहायता देने एवं स्वयं प्रकाशित करने के कार्य में देवस्थान संलग्न है। प्रस्तुत पुस्तक 'संत त्यागराज' का प्रकाशन देवस्थान की ओर से हो रहा है।

इस पुस्तक के लेखक डा॰ ई. पांडुरंगाराव जी हिन्दी भाषा के अधिकारी विद्वान हैं। उन्होंने अपनी इस पुस्तक में त्यागराज के जीवन संबंधी विशेषताओं के साथ साथ उनके कुछ कीर्तनों हिन्दी में रूपांतरण किया है।

आशा है, राष्ट्रभाषा हिन्दी में प्रकाशित होने के कारण समग्र भारत में इस कृति का प्रचार व प्रसार होगा और यह पाठकों के लिए अत्यंत उपयोगी सिद्ध होगी।

तिरुपति,

ता. १४—९—१९८२.

जी. कुमारस्वामी रेड्डी,
कार्यपालक अधिकारी,
तिरुमल तिरुपति देवस्थान.

आमुख

आज से सात साल पहले की बात है। प्रथम विश्व तेलुगु सम्मेलन के अवसर पर तेलुगु भाषा, साहित्य और संस्कृति का परिचय कराने वाले कुछ ग्रंथ प्रकाशित करने की बात चल रही थी। इस योजना के अंतर्गत अधिकांश पुस्तकें तेलुगु और अंग्रेजी में प्रकाशित हो रही थीं। इस सिलसिले में आंध्र प्रदेश के तत्कालीन शिक्षा मंत्री श्री मंडलि वेंकट कृष्णाराव के मन में यह विचार उत्पन्न हुआ कि भारत की जन भाषा हिन्दी के माध्यम से भी कुछ पुस्तकें प्रकाशित होनी चाहिए। उनके अनुरोध पर "संत त्यागराज" नाम की यह पुस्तक मैंने लिखी थी। आंध्र प्रदेश संगीत नाटक अकादमी की ओर से उसी सम्मेलन के अवसर पर यह पुस्तक प्रकाशित भी हुई। प्रकाशित होने के कुछ ही महीनों में पुस्तक की सारी प्रतियां बिक गयी थीं। तब से इसके पुनर्मुद्रण पर विचार किया जा रहा था और इसी प्रसंग में तत्कालीन तिरुमल तिरुपति देवस्थानम् के कार्यपालक अधिकारी श्री पी. वी. आर. के. प्रसाद से एक दिन संयोग से बातचीत हुई। प्रस्तुत रचना "संत त्यागराज" से वे बहुत प्रभावित हुए और बोले कि देवस्थानम् की तरफ से इसका प्रकाशन हो जाए तो बहुत अच्छा रहेगा। देवी प्रेरणा से प्रस्तुत उनके प्रस्ताव को मैंने तुरन्त स्वीकार किया। हम दोनों का यह शिव संकल्प सप्तगिरि के स्वामी श्रीनिवास की स्वीकृति पाकर अब सहृदय पाठकों के सामने साकार हो रहा है। आशा है, यह प्रकाशन संगीत साहित्य और दर्शन के जिज्ञासु पाठकों को परमार्थ के पथ पर अपेक्षित पाथेय प्रदान कर सकेगा।

संत त्यागराज केवल आंध्र प्रदेश की नहीं, बल्कि समस्त साहित्य-जगत् की चिरंतन विभूति हैं। प्रायः लोग त्यागराज को केवल गायक और संगीतज्ञ के रूप में जानते हैं। लेकिन संगीत त्यागराज के लिए साधन मात्र था। संगीत और साहित्य के माध्यम से जीवन के परमार्थ को स्वयं प्राप्त करने और दूसरों को भी कराने का शुभ संकल्प नाद योगी त्यागराज को भाव भोगी बना चुका था। संत की वाणी में संगीत, साहित्य और दर्शन का मंगलमय संगम दिखाई देता है। त्यागराज की भाषा कहने के लिए तेलुगु है। लेकिन यह वास्तव में हृदय की भाषा है जिसे त्यागराज के हृदय के स्वामी पहचानते थे। संत त्यागराज की भाषा का वैज्ञानिक विश्लेषण करने पर इसमें कोई खास बात नहीं दिखाई देती। विद्वत्ता के प्रदर्शन का इसमें कोई पुट नहीं मिलता। बात बिल्कुल साधारण-सी लगती है। लेकिन यही बात प्रभु को अच्छी लगती है। विशेषता का अभाव ही इसकी वास्तविक विशेषता है। इसमें कुछ नहीं है, फिर भी सब कुछ है।

संत त्यागराज के गीतों की शैली इतनी सीधी सादी और दिल को लुभाने वाली होती है कि वह गीत की रचना क्या करते हैं, अपने प्रभु के आमने सामने बैठकर आत्मीयता के साथ बात करते-से प्रतीत होते हैं। उन का निश्चित मत था कि प्रभु पद के गुणगान में ही पद रचना का परमार्थ निहित है। कहते हैं— "प्रभु पद जो न रचाए पद, गीत अगीत समान"।

संत त्यागराज तेलुगु भाषी थे, पर रहते थे तमिल भाषी प्रदेश में। फिर भी उन्होंने अपनी गीत रचना के लिए तेलुगु को ही माध्यम बनाया था। आज दक्षिण भारत के घर घर में तमिल, तेलुगु, कन्नड और मलयालम भाषी भाषा-भेद भुलाकर

बड़ी तत्परता के साथ उन के गीत गाते हैं। भावात्मक एकता का यह उदाहरण समूचे भारत के लिए अनुकरणीय है। आज संत त्यागराज का नाम उत्तर भारत में भी पहुंच चुका है। लेकिन नाम के साथ साथ उन की स्वर लहरी भी उत्तर के वायुमंडल में संचरित हो जाए तो संत की साधना सार्वभौमिक रूप धारण कर सकेगी। इसी दिशा में प्रस्तुत रचना एक विनम्र प्रयास है।

प्रस्तुत रचना में संत त्यागराज की जीवनी का साधारण परिचय कराया गया है। संत की जीवन-साधना के तीन प्रधान पहलू हैं:— राम, राग और राज। राम संत के जीवन के सर्वस्व थे। उनसे संपर्क स्थापित करने का माध्यम था राग जो कि प्रणव नाद का ही प्रकट रूप था। इस राम भावना और राग साधना से संत की आत्मा को जो अक्षय साम्राज्य मिला था, वह त्यागराज के जीवन की सबसे बड़ी उपलब्धि थी और यही त्यागराज का राम राज्य और राग राज्य था।

इन सभी बातों का संक्षिप्त विवेचन इस पुस्तक के सात अध्यायों में प्रस्तुत है जिनको "स्वर सरणी" का नाम दिया गया है। परिशिष्ट के रूप में संत त्यागराज के 77 गीतों का हिन्दी में गीतानुवाद प्रस्तुत है जिसको फिर सात प्रकरणों में बांटा गया है। इन्हीं प्रकरणों के नाम हैं-वंदना, अर्चना, भावना, वेदना, चेतना, सांत्वना और साधना।

अब यह सारी साधना सहृदय पाठकों के सामने प्रस्तुत है। आशा है, बालाजी के श्री चरणों की सश्रीकता से यह साधना पावन बन जाएगी।

नई दिल्ली,

पांडुरंग राव

१४—९—१९८२.

आभार

इतिहास और संस्कृति की सुदृढ़ नींव पर निर्मित तेलुगु भाषियों की शताब्दियों की ऐतिहासिक एकता को सभी प्रकार से सम्पन्न और संपुष्ट बनाने के महान् लक्ष्य को लेकर आन्ध्र प्रदेश सरकार ने विश्व तेलुगु सम्मेलन का आयोजन किया है। युगादि त्योहार अर्थात् १२ अप्रैल १९७५ से शुरू होकर लगातार एक सप्ताह तक यह समारोह मनाया जा रहा है। आन्ध्र प्रदेश के मुख्य मन्त्री माननीय जलगं वेंगलराव की अध्यक्षता में स्वागत समिति का निर्माण किया गया है जिसके कार्याध्यक्ष आन्ध्र प्रदेश के शिक्षामन्त्री माननीय मण्डलि वेंकट कृष्णाराव हैं। इस संदर्भ में १९७५ को तेलुगु सांस्कृतिक वर्ष के रूप में मान्यता दी जा रही है।

विश्व तेलुगु सम्मेलन की स्वागत समिति ने आन्ध्र प्रदेश संगीत नाटक आकादमी से अनुरोध किया कि वह विश्व तेलुगु सम्मेलन के प्रारंभिक प्रयत्न के रूप में राज्य के विभिन्न केन्द्रों और दिल्ली में संगीत, नाटक, नृत्य एवं लोकनृत्य आदि के प्रदर्शनों का आयोजन करे और उन-उन कलाओं से सम्बन्धित कुछ उत्तम ग्रन्थों को प्रकाशन भी करे। आन्ध्र प्रदेश संगीत नाटक अकादमी ने उस अनुरोध को स्वीकार किया। दिल्ली, विजयवाडा, अनंतपुरम् और निजामाबाद आदि केन्द्रों में विभिन्न कलाओं के प्रदर्शनों का आयोजन किया गया है।

इस शुभ अवसर पद संगीत, नृत्य, नाटक एवं फ़िल्मों से सम्बन्धित कुछ पुस्तकों के प्रकाशन का कार्य भी स्वागत समिति के सहयोग से किया गया है। इसके लिए हम स्वागत समिति के कृतज्ञ हैं। इस अवसर पर प्रकाशित अनेक ग्रन्थों में से डा. इलपावुलूरि पांडुरंगाराव जी का यह 'संत त्यागराज' भी एक है। इस ग्रन्थ के लेखक के हम हृदय से आभारी हैं।

हैदराबाद
दि. १२ अप्रैल, १९७५

जे. बापुरेड्डी
विशेष अधिकारी
आन्ध्र प्रदेश संगीत नाटक अकादमी

भूमिका

विश्व तेलुगु सम्मेलन की कल्पना वर्षों पुरानी है। वह अब साकार होने जा रही है। कितने ही महानुभावों ने सोचा था कि देश विदेश के तेलुगु भाषी एक मंच पर विराजमान हों। वह शुभ समय भी सन्निकट है। आगामी युगादि पर्व का दिन तेलुगु भाषियों के दो हज़ार वर्षों के इतिहास में अविस्मरणीय बन जाएगा। सचमुच एक मधुर स्मृति के रूप में यह दिन भविष्य में याद किया जाएगा।

ईसा के पूर्व तीसरी शताब्दी के सातवाहन राजाओं के ज़माने से तेलुगु भाषियों का विशेष इतिहास है। भारत में हिन्दी भाषा-भाषियों के बाद तेलुगु भाषा भाषियों का स्थान है। तेलुगु भाषी क़रीब पाँच करोड़ तक हैं। बुद्ध के पूर्वयुग से अंग्रेज़ों के शासन काल तक तेलुगु भाषी बड़ी तादाद में विदेशों में चले गये। वहाँ की जनता के साथ हिल-मिल कर रह गये।

विश्व तेलुगु सम्मेलन का लक्ष्य विश्व के विभिन्न देशों में रहने वाले तेलुगु भाषियों को एक मंच पर लाकर पारस्परिक चर्चाओं और विचार विनिमय के द्वारा सांस्कृतिक एवं भाषा विषयक सम्बन्धों को सुदृढ़ बनाने की सुविधाएँ प्रस्तुत करना है। तेलुगु भाषा भाषियों को एक सूत्र में बांध कर उनके द्वारा देश की एकता की श्रीवृद्धि में सहयोग देना है। मेरा विश्वास है कि विश्व तेलुगु सम्मेलन इस दिशा में सहायक सिद्ध होगा।

दिनांक १२ अप्रैल, १९७५ से यह सम्मेलन शुरू होकर लगातार सात दिनों तक चलेगा। इसमें संसार के विभिन्न देशों और भारत के विभिन्न प्रांतों से कितने ही प्रमुख लोग भाग लेंगे। तेलुगु भाषी जनता के जीवन, इतिहास और साहित्य से सम्बन्धित विभिन्न विशेषताओं को प्रतिबिंबित करने वाली सांस्कृतिक प्रदर्शिनी का आयोजन होगा। तेलुगु साहित्य और तेलुगु भाषियों के जीवन की विशेषताओं को प्रतिबिंबित कर सकने वाले स्थायी संग्रहालय (म्यूजियम) की स्थापना का बीजारोपण होगा। यात्री इस संग्रहालय में पहुँच कर तेलुगु भाषियों के समग्र स्वरूप के दर्शन कर सकेंगे।

तेलुगु भाषियों की संस्कृति एवं उनकी साहित्यिक विशेषताओं के परिचायक विशेषांक तेलुगु, हिन्दी, अंग्रेज़ी और उर्दू भाषाओं में प्रकाशित होंगे।

तेलुगु भाषियों की उपलब्धियों का परिचय कराने वाली कुछ पुस्तकों के प्रकाशन की योजना भी बनायी गयी है। तेलुगु साहित्य, संस्कृति एवं इतिहास आदि के परिचयात्मक ग्रन्थ इस योजना के अन्तर्गत प्रकाशित किये जा रहे हैं। निश्चित समय पर जिन लेखकों ने ग्रन्थ लिख कर दिये उनको धन्यवाद समर्पित करता हूँ। इन ग्रन्थों के प्रकाशन की जिम्मेदारी लेने वाले आन्ध्र प्रदेश की अकादमियों के पदाधिकारियों का मैं बड़ा आभारी हूँ। आशा करता हूँ कि ये ग्रन्थ उपयोगी सिद्ध होंगे। मैं विश्वास करता हूँ कि इस सम्मेलन के फल स्वरूप राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय शोधकर्ताओं के लिए एक उपयोगी 'अन्तर्राष्ट्रीय तेलुगु वैज्ञानिक संस्था' क़ायम होगी। ये सब कार्य जब पूरे होंगे तभी विश्व तेलुगु सम्मेलन सार्थक माना जा सकता है।

हैदराबाद
दि. १०-४-१९७५

जलगं वेंगलराव
अध्यक्ष, स्वागत समिति
विश्व तेलुगु सम्मेलन

स्वर-सारणी

परंपरा और प्रतीक १

परिवार और पर्यावरण ५

परिचय और पर्यटन १५

परब्रह्म राम २७

प्रणव नाद राग ४०

पद-निधि का राज ५४

परंज्योति में लीन ६६

परिशिष्ट : पदावली ६९

समर्पण

जिस पद का जीवन भर सेवन
कर जिसने पद पाया पावन।
उस प्रशस्त पदनिधि का कीर्तन
राग सुधा रस सार सनातन॥

अर्पित है यह कृति प्रस्तुति में
उसी कृती वेंकट पद युति में।
सुब्रह्मण्य सरोरुह द्युति में
पूज्य पिता की पावन स्मृति में॥

परम्परा और प्रतीक

"स तरति लोकांस्तारयति"—नारद

आलोक पुंज भारत की सांस्कृतिक परम्परा को महत्व प्रदान करने वाला मंगलमय परिधान उसके महत्व का महनीय मापदण्ड है। भारत इसलिए महान् नहीं है कि वह एक विशाल देश है या उसकी भौगोलिक और प्राकृतिक सम्पदा सुखद और समृद्ध है या उसकी विराट् जनशक्ति विश्व विजय की गाथाओं से गौरवान्वित है या उसकी बौद्धिक विभूति ने ज्ञान विज्ञान की विचार धारा को नई दिशा में प्रवाहित किया है। समस्त संसार भारत को आदर की दृष्टि से इसीलिए देखता है कि उसकी आर्ष दृष्टि ने असत् में संत अंधकार में आलोक, नश्वर में अविनश्वर, पार्थिव में अपार्थिव और संसरणशील शरीर में चिरंतन आत्म तत्व का अवलोकन करने की चेष्टा की है। इसी विचक्षण क्षमता ने संग्रह की अपेक्षा संयम को, सम्पत्ति की अपेक्षा प्रतिपत्ति को, अर्थ की अपेक्षा परमार्थ को, वासना की अपेक्षा उपासना को और लोक की अपेक्षा आलोक को अधिक महत्व प्रदान किया है। महत्व की गरिमा अपने लघुत्व के बोध और सार्वजनिक महत्व की सहज अनुभूति में है। भारत के पहुँचे हुए संत-महात्माओं ने महत्व के इसी मापदण्ड को रूपान्वित और कार्यान्वित किया है।

संत त्यागराज इसी प्राक्तन परम्परा के प्रतीक है जिसे प्राचीन युग में पाराशर, प्राचेतस आदि ने प्रवर्तित किया था, अर्वाचीन काल में आदिशंकर, चैतन्य महाप्रभु, तिरुवल्लुवर आदि ने पल्लवित किया था और अभी चार पाँच सदियों से पूर्व गोस्वामी तुलसीदास, संत तुकाराम, गुरु नानक, भक्त पुरंदरदास, स्वामी नारायण तीर्थ आदि ने परिमार्जित और परिवर्द्धित किया है। इन सभी संतों, भक्तों, प्रवक्ताओं, कवियों और कलाविदों का यही प्रयास रहा है कि परम रमणीय परमार्थ को घर-घर में कैसे पहुंचाया जाए, अग-जग को जागरित करने वाला प्राभातिक समीर संसार के कोने-कोने में कैसे संचरित कराया जाए, सतत संघर्ष की झंझा से दिशा खो बैठे जन मानस को सही दिशा में कैसे

प्रवर्त्तित और गतिशील बनाया जाए और जनता को जनार्दन की रसार्द्र अनुभूति से कैसे कृतकृत्य बनाया जाए। इसके लिए समन्वय, समवेदना और साधना का सम्बल लेकर इन महानुभावों ने एक ऐसा आचरण-सूत्र निकाला है जिससे मानव की शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक आवश्यकताओं की एक साथ पूर्ति हो सके। आचरण के इस सूत्र में वे समस्त मानव जाति को मानव मात्र को ही नहीं, बल्कि कहीं-कहीं मानवेतर चराचर जीव जगत् को—भी—आबद्ध करना चाहते थे। सर्वात्मा के साक्षात्कार की साधना में समस्त मानवता की सहयोगिता और सहभागिता होनी चाहिए, यही संतों की सात्विक भाव-भूमिका है।

इसी भूमिका के आधार पर आदिकवि वाल्मीकि ने वेदवेद्य परंधाम को दशरथ नंदन राम के रूप में अवतरित कर, वेद को काव्य का रूप दिया। पाठ्य और गेय-दोनों रूपों में मधुर, मनोहर प्रतीत होने वाले इस काव्य को सबके लिए आस्वाद्य बनाने के उद्देश्य से जयदेव, तुकाराम, पुरंदरदास जैसे संतों ने गीत के रूप में प्रस्तुत कर शिशुओं और पशुओं तक परमार्थ को पहुँचाने का प्रयत्न किया। इसी को संत त्यागराज ने 'नाद' के रूप में अपनाया और फैलाया। नाद साधना के मर्मज्ञ उपासक त्यागराज ने अपने परम आराध्य राम को नाद के आकार में देखा। उनके राम उनके नाद में व्यंजित नाम के मूर्त रूप हैं। नाम और रूप की यही एकात्मकता त्यागराज की वाणी की सबसे बड़ी रमणीयता है। वेद से काव्य, काव्य से गीत, गीत से नाद और नाद से नाम तक की यह सात्विक गतिशीलता संतों की सार्वभौमिक संवेदनशीलता को स्पष्ट करती है।

संत त्यागराज की साधना को इसी सामाजिक दृष्टि से समझने का प्रयत्न करना चाहिए। देश, काल और पात्र की सापेक्ष सीमाओं से इन संतों की वाणी संकीर्ण नहीं होती। लौकिक दृष्टि से वे किसी प्रांत विशेष के, किसी समय विशेष के और किसी व्यावहारिक नाम से जाने जाते हैं, पर वास्तव में वे सारे संसार के, सभी युगों के और समस्त प्राणियों के होते हैं। त्यागराज अपने एक संगीत-रूपक के मंगलाचरण में अपने पूर्ववर्ती संतों की वंदना करते हुए आसेतु हिमाचल समस्त भारत के महात्माओं का स्मरण करते हैं जिनमें गोस्वामी तुलसीदास, पुरंदरदास, रामदास, नामदेव, ज्ञानदेव, जयदेव, तुकाराम और नारायण तीर्थ के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इससे यह स्पष्ट होता है कि जिस प्रशस्त परम्परा का प्रतीक बन कर वे अपनी महती साधना

में अग्रसर हो रहे थे, उसकी विराट् भूमिका से वे भलीभांति परिचित थे और उसी 'अनेक' में 'एक' बनकर वे अपने पुरुषार्थ को चरितार्थ बनाना चाहते थे।

भारत में अनेक संत हुए, अनेक गायक हुए, अनेक कवि और मनीषी भी हुए। पर ऐसे लोग बहुत कम हैं जो उच्चकोटि के संत भी हों, गायक भी हों, संगीतज्ञ भी हों, कवि भी हों और दार्शनिक भी हों। इस प्रकार संगीत, साहित्य और दर्शन की पराकाष्ठा का मंगलमय संगम संत त्यागराज जैसे इने-गिने महानुभावों में ही पाया जाता है। आज दक्षिण भारत में 'कर्णाटक' संगीत अपने नाम को सार्थक बनाते हुए सबको श्रुति सुख प्रदान कर रहा है तो इसका अधिकांश श्रेय संगीतकार त्यागराज को ही मिलना चाहिए क्योंकि वे कर्णाटक संगीत के इतिहास में युग निर्माता माने जाते हैं और उनके गीत दक्षिण भारत के घर-घर में गाए जाते हैं। दक्षिण भारत में कोई भी गान-सभा त्यागराज के कम से कम किसी एक गीत के गायन के बिना पूरा नहीं होती। तेलुगु भाषी समाज से दूर तमिल प्रांत में रहते हुए भी त्यागराज ने तेलुगु में ही अपने गीतों की रचना की। पर तेलुगु, तमिल, कन्नड और मलयालम चारों भाषाओं के गायक भाषा-भेद को एकदम भूल कर इनके गीत बड़ी तल्लीनता के साथ गाते हैं। भावात्मक एकता में भाषा की प्रभविष्णुता का यह सुन्दर उदाहरण स्पृहणीय और अनुसरणीय है।

संगीत के क्षेत्र में त्यागराज के प्रचुर योगदान के कारण उनकी साहित्यिक गरिमा का प्रायः लोग अपेक्षित मात्रा में अनुभव नहीं कर पाते। त्यागराज का नाम लेते ही जन साधारण क्या, विद्वत् समाज के सामने भी, संगीतकार त्यागराज का ही चित्र उभर आता है। पर उनके गीत भाव पक्ष और कला पक्ष दोनों दृष्टियों से साहित्यिक वैभव के अमूल्य रत्न हैं। उनकी सैकड़ों 'राग रत्न मालिकाएँ' काव्यकला की कमनीय कांति को व्यंजित करने वाली हैं। वेद वेदान्त, शास्त्र, पुराण, आगम आदि में जो परम तत्व की बातें कही गई हैं उन सबका सार त्यागराज की आपात मधुर राग-सुधा में पाया जा सकता है। गम्भीर से गम्भीर दार्शनिक भावों को 'सुमति' त्यागराज ने अपने स्वर में उतार कर जन मन को गायन से पावन बना दिया है।

१. 'कर्णाटक' शब्द का अर्थ है—सुनने में सुखद

इसमें भारत की परम्परागत सांस्कृतिक चेतना का एक स्मरणीय रहस्य निहित है। हमारे यहाँ केवल असाधारण प्रतिभा, असामान्य विद्वत्ता या अप्राकृत पराक्रम से आत्म तत्व का बोध सम्भव नहीं माना गया। अन्तःकरण की निर्मलता के साथ-साथ अनन्त शक्ति, अनन्त सौन्दर्य और अनन्त औदार्य के सामने आत्म-समर्पण की भावना में ही जीवन की चरितार्थता निहित बताई गई है। यही कारण है कि वेदों में, उपनिषदों में, आर्ष कवियों की रचनाओं में, प्रवक्ताओं के प्रांजल वचनों में और सन्तों की सात्विक वाणी में सहज भावों को सरल भाषा में सुस्पष्ट और सुबोध शैली में व्यंजित करने का ही प्रयास किया गया है। शब्दों के आडंबर से और साधना की गहराई से जन-साधारण को अनावश्यक संभ्रम में डालने का कहीं तनिक भी आभास नहीं मिलता। इसी परम्परा के अनुसरण में सन्त त्यागराज ने भी सबसे सरल और सबके लिए सुसाध्य भक्ति मार्ग का प्रचार किया और वह भी भजन, गान और ध्यान के सहारे। राम कथा में रागसुधा को मिला कर त्यागराज ने ऐसा दिव्य पीयूष तैयार किया कि उनकी प्रत्येक 'कृति' में आराध्य की 'आकृति' अपने आप उतर आती है और छः सात स्वरों के संयत स्मरण और संगठित उच्चारण मात्र से अनन्त ज्ञान की अनुभूति कराती है। प्रभु का वचन भी इसी बात की पुष्टि करता है—

"मद्भक्ता यत्र गायंति तत्र तिष्ठामि"

परिवार और पर्यावरण

"आनंदादेव खल्विमानि भूतानि जायंते"

संत त्यागराज का जन्म दक्षिण भारत में कावेरी नदी के तट पर तंजावूर जिले के तिरुवारूर नाम के गाँव में सुप्रतिष्ठित ब्राह्मण परिवार में ४ मई १७६७ को तदनुसार वैशाख शुक्ला सप्तमी के दिन सोमवार को दोपहर के समय कर्क लग्न में पुष्य नक्षत्र में हुआ था। चांद्रमान तेलुगु पंचांग के अनुसार उस वर्ष का नाम सर्वजित् था। जन्म तिथि के सम्बन्ध में कोई मतभेद नहीं है, हालांकि कुछ लोग इनके जन्म का वर्ष १७५९ बताते हैं और कुछ लोग १७७० सिद्ध करते हैं। पर सौभाग्य से बालाजीपेट में पाई गई पांडुलिपियों में त्यागराज की जन्मकुण्डली मिली जिसे उनके प्रशिष्य कवि वेंकटसूरि ने अपने गुरु बालाजीपेट वेंकटरमण भागवतार की जन्म कुण्डली के साथ-साथ लिख रखा था। दोनों जन्म कुण्डलियों के साथ-साथ मिल जाने से इनको प्रमाणिक माना जा सकता है। त्यागराज की पुण्य तिथि में कोई मतभेद नहीं है। निश्चित रूप से ६ जनवरी १८४७ (शुक्रवार) को चांद्रमान पराभव संवत्सर पुष्य बदी पंचमी के दिन (उत्तर भारत के पंचांग के अनुसार यह माघ बदी पंचमी मानी जाएगी) वे ब्रह्म लीन हो गये थे। इस प्रकार त्यागराज ने सन् १७६७ में जन्म लेकर १८४७ तक की अस्सी वर्ष की आयु में अपने सुस्थिर जीवन को सुस्वर साधना से सुमधुर बना कर उस माधुर्य का रसास्वादन अपने और परवर्ती युग के रसग्राही हृदयों को कराया। जीवन के अन्तिम क्षणों में उन्होंने सन्यासाश्रम की दीक्षा विधिवत् ग्रहण की। अतः उनकी आराधना आज भी प्रतिवर्ष पुष्य (माघ) बदी पंचमी को तिरुवैयार में बड़ी श्रद्धा के साथ संगीत प्रेमी समाज द्वारा सम्पन्न होती है।

त्यागराज का जन्म जिस गाँव में हुआ था, वहाँ पर त्यागराज के नाम से प्रतिष्ठित शिवजी का एक मन्दिर है। त्यागराज उसी देवता के वरद पुत्र माने जाते हैं। कहा जाता है कि त्यागराज के माता-पिता को स्वप्न में उनके जन्म का आभास हुआ था और कुलदेवता त्यागराज की इच्छा पर उन्होंने

अपने पुत्र का नाम त्यागराज रखा था। त्यागराज के गीतों के अन्त में मुद्रा के रूप में त्यागराज का नाम भी आता है जिसका संकेत संत त्यागराज के अतिरिक्त कुलदेवता त्यागराज की ओर भी समझा जा सकता है। चूंकि त्यागराज की मूर्ति शिव की है, इसलिए जब कभी त्यागराज अपने आराध्य राम को 'त्यागराजनुत' कहते हैं, उससे दो अर्थ निकलते हैं—एक तो भक्त त्यागराज से कीर्तित और दूसरा भगवान त्यागराज (शिव) से कीर्तित। दूसरा अर्थ लेने से शिव केशव का सामरस्य भी व्यंजित होता है। तभी तो कहा गया है—'ऋषीणां पुनराद्यानां वाचमर्थोनुधावति'

त्यागराज के पिता का नाम काकर्ल रामब्रह्मम् था। काकर्ल कुलनाम था और रामब्रह्मम्। उनका व्यवहार नाम था। त्यागराज अपनी कई रचनाओं में अपने को काकर्ल वंशज और रामब्रह्मम् का पुत्र बताते हुए बड़ा गर्व का अनुभव करते हैं। रामब्रह्मम् अपने समय के माने हुए विद्वान् और संस्कार सम्पन्न ब्राह्मण थे। त्यागराज के परिवार में उनके प्रपितामह पंचनद ब्रह्म के समय से ही संगीत और साहित्य के संस्कार पनपते रहे। पंचनदब्रह्म के पुत्र गिरिराज ब्रह्म ख्याति-प्राप्त कवि थे और गिरिराज कवि के नाम से प्रसिद्ध थे। गणेश वन्दना के एक गीत में त्यागराज 'गिरिराज सुता तनय' कह कर प्रकारांतर से अपने पितामह (या मातामह) से अपना सम्बन्ध बताते हैं। त्यागराज के पिता रामब्रह्मम् इन्हीं के पुत्र कहे जाते हैं। कुछ लोगों के अनुसार त्यागराज गिरिराज कवि के दौहित्र (पुत्री के पुत्र) थे। कुछ भी हो, त्यागराज के पूर्वज साहित्य और संगीत के क्षेत्र में प्रख्यात अवश्य थे। पिता रामब्रह्मम् तो कांची के प्रसिद्ध स्वामी उपनिषद् ब्रह्मेंद्र के सहपाठी थे। रामब्रह्मम् की योग्यता और विद्वत्ता से प्रभावित होकर तंजावूर के राजा तुलजाजी (द्वितीय) ने उनके लिए तिरुवैयार में एक मकान बनवा दिया और आजीविका के लिए कुछ जमीन भी दी। जब त्यागराज सात आठ साल के हो गये तब उनके माता-पिता तिरुवारूर छोड़ कर तिरुवैयार पहुंच गये। वहीं पर आठ वर्ष की आयु में त्यागराज का उपनयन (यज्ञोपवीत) संस्कार भी हुआ। रामनवमी के उपलक्ष्य में तंजावूर के राजा के यहां नवरात्र मनाया जाता था जहां पर त्यागराज के पिता रामब्रह्मम् रामायण का प्रवचन करने जाते थे। पिता के साथ बालक त्यागराज भी जाया करते थे। पुत्र रामायण के श्लोक अपनी सुरीली आवाज़ में सुनाया करते थे और पिता उनकी विशद व्याख्या किया करते थे। इस प्रकार बचपन में ही त्यागराज को अपने पिता के

सान्निध्य में आदिकाव्य रामायण का पठन वाचन करने और उसका परमार्थ ग्रहण करने का सुअवसर मिला था। एक दिन जब पिता जी रामतत्व की व्याख्या करने लगे तो बालक त्यागराज रामकथा के माधुर्य पर इतना भाव-विभोर हो गया था कि अचानक उसके मुंह से अनायास एक गीत निकला था जिसे सुन कर वहाँ के श्रोता मुग्ध हो गए थे। गीत इस प्रकार है :

नमो नमो राघवाय अनिशं नमो नमो राघवाय।
शुकनुताय दीनबंधवे सकल लोक दयासिंधवे॥
श्रित दुरित तमो बहु रवये सतत पालिताद्भुत कवये।
निज सेवक कल्पतरवे अज रुद्राद्यमर सुगुरवे॥
दीन मानव गण पतये दानवातंकाय सुमतये।
आयुरारोग्य दायिने वायुभोजि भोगशायिने।
नूतन नवनीत भक्षिणे भूतलादि सर्वसाक्षिणे।
वरगज कर तुलित बाहवे शरजित दानव सुबाहवे॥
नागराज पालनाय त्यागराज सेविताय।

त्यागराज का यह पहला गीत उनके अन्दर जमे हुए जन्म जन्मांतर के प्राक्तन संस्कारों का आकस्मिक प्रस्फुटन था जिसमें उनके पिता रामब्रह्मम् ने ब्रह्मानंद का ही अनुभव किया था। वे तुरन्त समझ गये कि यह कुछ बनने जा रहा था। उसके बाद जब कभी त्यागराज किसी गीत की रचना करते तो उसे कहीं दीवारों पर लिख देते थे और पिता जी उसे देख कर मन ही मन पुलकित हो उठते थे। प्रतिदिन प्रातःकाल त्यागराज पूजा के लिए फूल लाने एक निकट-वर्ती वाटिका में जाया करते थे। उसी बगीचे के पास एक प्रसिद्ध गायक का निवास था। प्रति दिन सबेरे वहाँ संगीत की कक्षाएं चला करती थीं। फूल तोड़ते-तोड़ते बालक त्यागराज का मन उस कक्षा से निकलने वाली राग-रागिनियों की मीठी-मीठी लहरों में बह जाता था और थोड़ी देर वहीं बैठ कर सुन लेते थे। यह बात थोड़े ही दिनों में त्यागराज के पिता के कानों तक पहुँची। पिता जी प्रसन्न हुए और तुरन्त उन्होंने अपने होनहार पुत्र को उस गायक की सुश्रूषा में लगा दिया। यह वही शोंठिवेंकटरमणय्या थे जो तंजावूर के राजा के दरबारी गायक थे और जिनकी प्रतिभा पर प्रसन्न हो कर राजा उन्हें अपने साथ गद्दी पर बिठा लिया करते थे। गुरु कटाक्ष और जन्मजात प्रतिभा के बल पर त्यागराज ने दो तीन वर्षों में ही अपने गुरु से प्राप्य सारा ज्ञान प्राप्त कर लिया।

इधर घर में त्यागराज की माता सीतम्मा भी कर्णाटक संगीत में अच्छी रुचि रखती थीं और अवकाश के समय पर अपने पुत्र को रामदास, पुरंदरदास, जयदेव, नारायण तीर्थ आदि के प्रसिद्ध गीतों से और उनकी संगीत साधना से परिचय कराती थीं। त्यागराज के मातामह वीणा कालहस्तय्या अपने समय के प्रसिद्ध गायक और वैणिक थे और त्यागराज की नादोपासना को उद्भासित और विकसित करने में उनका भी बहुत बड़ा हाथ था। वीणावादन के प्रति त्यागराज के मन में अनुराग पैदा करने का श्रेय इन्हीं को है। याज्ञवल्क्य की स्मृति में वीणावादन को मोक्ष का साधन बताया गया है। त्यागराज भी अपने नादब्रह्म को वीणावादन में तत्पर बताते हैं। इस प्रकार पिता रामब्रह्मम् और माता सीतम्मा के लालन-पालन में गायक त्यागराज के भावी जीवन की अच्छी भूमिका का निर्माण हुआ। त्यागराज स्वयं अपने इस भाग्य को सराहते हुए गाते हैं—'सीता मेरी माता है और श्रीराम मेरे पिता हैं।" यह संयोग बड़े भाग्य से ही किसी के जीवन में घटित होता है।

त्यागराज के दो बड़े भाई भी थे। पर माता-पिता उनसे अधिक संतुष्ट नहीं थे, बल्कि उनके सदाचारों से कुछ परेशान ही थे। मझला भाई रामनाथम् अधूरी आयु में ही चल बसे थे। बड़ा भाई पंचापगेशम् जिसको जल्पेशम भी कहा जाता था, हमेशा अर्थ परायण और लौकिक सुख लालसा में मग्न रहता था। छोटे भाई त्यागराज का पढ़ना लिखना गाना सुनना साधु सन्तों के पीछे घूमना-फिरना उसे अच्छा नहीं लगता था। त्यागराज जब प्रख्यात गायक बन गए, तब जल्पेशम् ने उनसे कई बार कहा कि आठों पहर राम नाम रटने से क्या लाभ है, कभी राजा के यहाँ जा कर अपनी गान कला का परिचय दे दो तो हमारी गरीबी दूर हो जाए और सात पीढ़ियों तक घर सपन्न रहे। पर प्रकृत्या त्याग और योग में रुचि रखने वाले त्यागराज ने इस पर ध्यान नहीं दिया। परिणाम यह हुआ कि बड़ा भाई नाराज हो गया और छोटे भाई की अनुपस्थिति में उससे उसके पूजापाठ की सामग्री के साथ-साथ रामपचायतन की प्रतिमा को भी कावेरी नदी में फेंक दिया। त्यागराज ने घर लौट कर देखा तो अपने आराध्य की प्रतिमा को नहीं पा कर वे बहुत दुखी हुए। बाद में वास्तविकता का पता चला तो कावेरी के तट पर खोजने लगे और आखिर त्यागराज के दृढ़ संकल्प ने अपने इष्ट देव की अभीष्ट प्रतिमा को पुनः प्राप्त कर लिया। खोई संपत्ति को फिर पा कर त्यागराज का मन नाच उठा। तुरन्त उनके मुंह से निकला—

"पाया मैंने आज राम धन।"

त्यागराज जितने शांत और संतुष्ट रहते थे उनके भाई उतने उग्र और असन्तुष्ट। आखिर दोनों में बंटवारा हो गया। धीरे-धीरे जब त्यागराज का यश चारों ओर फैल गया तब बड़े भाई का मन भी कुछ सीधा होने लगा। पर त्यागराज के प्रारंभिक जीवन में इस पारिवारिक अशांति ने कुछ असन्तोष का वातावरण अवश्य पैदा किया था। यही कारण है कि त्यागराज बहुधा अपने गीतों में भ्रातृत्व के सौभाग्य से वंचित सुग्रीव और विभीषण का दृष्टांत बार-बार प्रस्तुत करते हैं। राम लक्ष्मण और भरत शत्रुघ्न की अन्योन्यता का स्मरण कर वे पुलकित हो जाते हैं। यद्यपि त्यागराज को अपने बड़े भाई का प्रेम यथेष्ट रूप में नहीं मिला था, फिर भी वे इसे अपने भाग्य का विपर्यय ही समझते थे। भाई पर वे कभी नाराज़ नहीं हुए, बल्कि वे हमेशा उनके शुभचिंतक रहे। 'रिपूणामपि वत्सल' रामभद्र को आराध्य मान कर चलने वाले सन्त को सारा संसार सौहार्दपूर्ण दिखाई देता है।

त्यागराज अपनी जन्मभूमि के प्राकृतिक पर्यावरण से भी काफी संतुष्ट थे। 'ई महिलो सोगसैन चोलदेशमु' (इस पृथ्वी में सबसे सुन्दर चोलदेश) कह कर वे अपनी जन्मभूमि की काफी प्रशंसा करते हैं। पवित्र नदी कावेरी के तट पर स्थित पंचनदीश्वर के सान्निध्य में जीवनयापन करने को वे अपनेअहोभाग्य समझते थे। कावेरी के कलकल निनाद से पुलकित हो कर त्यागराज का कोमल हृदय गा उठता है—

सारि वेडलिन ई कावेरिनि चूडरे।
वारु वीरनुचु चूडक तानव्वारिगाभीष्टमुल नोसगुचु
दूरमुन नोकतावुन गर्जनभीकरमोकतावुन निंडुकरुणतो
निरतमुग नोक तावुन नडचुचु
वर कावेरि कन्यकामणि
वेडुकगा कोकिललु मोयगनु
वेडुचु रंगेशुनि जूचि मरि ईरेडु
जगमुलकु जीवनमैन
मूडु रेंडु नदि नायुनि जूड
राज राजेश्वरि यनि पोगडुचु
चूचि सुममुल वरामरगणमुलु
पूजलिडगडल सेयग त्यागराज सन्नुतुराले वेडलुन

(देखो, कावेरी नदी बलखाती कैसे बढ़-बढ़ कर बहती जा रही है। रास्ते में अपनी पराया सारा भेद-भाव छोड़ कर सब को सुख प्रदान करती, कहीं गरज-गरज कर चलती कहीं बरस-बरस कर बहती, कहीं कोकिल के स्वर में स्वर मिलाती, कहीं रगनाथ का गुणगान करती और कहीं पंचनदीश्वर को खोजते हुए आगे बढ़ती और राजराजेश्वरी की तरह ठाट से चलने वाली इस नदी सुन्दरी की शोभा देखते ही बनती है।)

कावेरी नदी के तट पर जहाँ पर पचनदीश्वर का मंदिर बसा हुआ है, उसके आसपास के प्रांत को पँचनद क्षेत्र भी कहा जाता है। उत्तर में जैसे पाँच नदियों से आवृत देश को पंजाब कहा जाता है, वैसे ही दक्षिण का यह क्षेत्र पंचनद के नाम से प्रसिद्ध है। त्यागराज ने अपना स्वर साधना के लिए इस पंचनद क्षेत्र को अत्यन्त अनुकूल पाया क्योंकि उन दिनों संगीत और भक्ति का यह प्रमुख केन्द्र रहा। कर्णाटक संगीत की विभूतित्रयी में त्यागराज के अतिरिक्त श्यामशास्त्री और मुत्तुस्वामी दीक्षितर नाम के दो और महानुभाव इसी प्रांत के थे।

तंजावूर के राजा का निवास भी संगीत का प्रधान केन्द्र बन गया था। उन दिनों तीन सौ से अधिक गायक राजाश्रय में रहते थे। प्रतिदिन राज दरबार में किसी न किसी गायक का विशेष कार्यक्रम रहा करता था। प्रायः प्रत्येक गायक को वर्ष में एक बार राजभवन में अपनी गान कला का प्रदर्शन करने का अवसर मिलता था। बहुत से गायक किसी राग विशेष की प्रकृष्ट साधना किया करते थे और उसी राग से उनका नाम भी प्रसिद्ध होता था—जैसे तोड़ी सीतारामय्या, अठाणा अप्पय्या, शकराभरणम् नरसय्या आदि। पर त्यागराज इस दरबारी वातावरण से एकदम दूर रहते थे। उनके गुरु शोंठि वेंकटरमणय्या के पिता शोंठि वेंकटसुब्बय्या का राजभवन में प्रतिष्ठित स्थान था। प्रतिवर्ष वर्षारम्भ के दिन राजमहल में वह गाया करते थे। यह विशेष सम्मान की बात मानी जाती थी। इतने विशिष्ट व्यक्ति के अनुरोध पर भी त्यागराज कभी राजभवन में नहीं गए। रामपंचायतन की रमणीय मूर्ति के सामने ही उनकी संगीत साधना चलती थी। उनके भाई जप्येश इसी पर उनसे नाराज़ भी हुए थे। प्रकृत्या त्यागराज लौकिक वैभव और यश मे उदासीन रहा करते थे।

जब त्यागराज अठारह साल के थे तब कांची के प्रसिद्ध परिव्राजक रामकृष्णानन्द ने उनसे कहा कि रामनाम का ९७ करोड़ बार जप करने से

भगवान राम के दर्शन हो जाएंगे। राम-रस के पिपासी त्यागराज के मन में यह उपदेश स्वातिसलिल की तरह घर कर गया। तत्काल उन्होंने साधना शुरू की। प्रतिदिन पंचनदीश्वर के मन्दिर के दक्षिणी मंडप में--जो कैलाश मंडप कहा जाता था—बैठ कर नियमित रूप से सवा लाख जप पूरा करते थे और तीस वर्षों में निष्ठावान सन्त ने अभीष्ट जप संख्या पूरी की और अभीप्सित फल भी प्राप्त किया। साधनावस्था में ही त्यागराज को भगवान रामचन्द्र की दिव्य आभा की झलक मिल जाती थी और वे पुलकित होकर सजल नयनों से प्रभु की शोभा का वर्णन करते हुए अनेक 'राम-रत्नमालिकाएं' गूंथ लेते थे।

साधना की इसी दशा में एक दिन वे नदी में स्नान करने जा रहे थे तो रास्ते में एक वृद्ध सन्यासी दिखाई पड़े। उनके हाथ में एक बड़ा ग्रन्थ था। उन्होंने उस ग्रन्थ को त्यागराज के हाथ में सौंप कर कहा कि अभी थोड़ी देर में मैं स्नान से निवृत्त हो कर आ जाता हूं, तब तक इसे संभाल कर रखना। बस, त्यागराज उस पोथी को हाथ में रख कर महाराज की प्रतीक्षा में बैठे रहे पर वे नहीं लौटे। निराश होकर त्यागराज घर लौट गए और पूजा पाठ के बाद ग्रन्थ खोल कर देखने लगे तो चकित हो गए। वह ग्रन्थ तो नाद कला विशारद नारद का 'स्वरार्णव' था जिसके बारे में त्यागराज ने बहुत कुछ सुना था, पर कभी आंखों से नहीं देखा। उन्हें लगा, स्वयं नारद वृद्ध सन्यासी का वेष धारण कर उन्हें वह पुस्तक भेंट करने आए थे। ठीक उसी प्रकार रात को त्यागराज ने स्वप्न में नारद को अपने उस ग्रन्थ का उल्लेख करते हुए देखा था तो उनका मन-मयूर नाच उठा था। तब से त्यागराज ने नारद को अपना गुरु माना और नारद की नादोपासना के सम्बन्ध में उन्होंने कई गीत लिखे।

यहां पर एक बात ध्यान देने योग्य यह है कि त्यागराज के जीवन में जब कभी कोई उल्लेखनीय घटना हुई, वहां कोई न कोई सन्यासी महापुरुष अवश्य आते हैं। स्वामी रामकृष्णानन्द ने रामनाम का उपदेश दिया तो 'वाग्विदां वर' नारद ने स्वरार्णव प्रदान किया। यह तो भाग्य की बात है कि पञ्चनद क्षेत्र को ढूंढ़ते-ढूंढ़ते स्वरार्णव अपने आप त्यागराज के पास पहुंच गया। "जेहि के जेहि पर सत्य सनेहू सो तेहि मिलै न कछु संदेहू"--

सन्यासियों के सम्पर्क में आने और उनसे प्रेरणा प्राप्त करने पर भी त्यागराज स्वयं सन्यासी नहीं थे, बल्कि वे एक आदर्श गृहस्थ थे। वे अपने एक

गीत में गार्हस्थ्य जीवन की वरीयता को स्पष्ट करते हुए लिखते हैं— 'मोरपंखधारी' श्याममनोहर को निरंतर अपने आनन्द में समाए रहने वाले, हिंसा से दूर रह कर सदा परमहंस परिव्राजकों की परिचर्या करने वाले, ज्ञान और वैराग्य से संसार रूपी कानन में हमेशा प्रभु का नाम ले कर कर्मों का फल उन्हीं को अर्पित कर निर्लिप्त भाव से नियत आचरण करने वाले अगर गृहस्थ हुए तो क्या हुआ ?" इससे स्पष्ट होता है कि त्यागराज ने गीता के उपदेश के अनुसार कर्म सन्यास से निष्काम कर्मयोग को ही अधिक श्रेयस्कर समझा और उसी धारणा के अनुसार आदर्श गार्हस्थ्य जीवन व्यतीत किया था।

त्यागराज का विवाह अठारह साल की अवस्था में पार्वती नाम की कन्या से हुआ था। पर दुर्भाग्य से कुछ ही वर्षों में पत्नी का देहान्त हुआ तो उनकी बहन कमलांबा से उनका पुनर्विवाह हुआ। कमलांबा काफी समय तक त्यागराज की सहचरी रही और पति की योग्य पत्नी के रूप में उनके पूजा पाठ, ध्यान भजन, उपासना-व्रत आदि में साथ देती रही। इस पुण्य दम्पति को एक लड़की भी हुई जिसका नाम उन्होंने सीतालक्ष्मी रखा। सीतालक्ष्मी का विवाह कुप्पुस्वामय्या से हुआ और उनको जो पुत्र हुआ उसका नाम पंचापगेशन् रखा गया। कुछ लोगों के अनुसार उनका नाम त्यागराज था। उनका विवाह गुरवम्मा नाम की कन्या से हुआ। उनकी फिर कोई सन्तान नहीं हुई। इस प्रकार त्यागराज का कोई सीधा वंशज आज नहीं रहा। पर ब्रह्मलीन सन्त सनातन नाद शरीर में सदा के लिए अमर बन गया।

जिस समय त्यागराज नाद साधना में संलग्न थे, उस युग का वातावरण कुछ विचित्र-सा था। त्यागराज तेलुगु भाषी समाज से काफी दूर रहते थे, पर अपनी मातृभाषा तेलुगु के प्रति स्वाभाविक और निसर्ग ममता के कारण उन्होंने तेलुगु में ही सारे गीत लिखे थे। कुछ तो शुद्ध संस्कृत में लिखे गीत भी मिलते हैं, पर उनको भी तेलुगुभाषी तेलुगु के गीत समझ कर ही गाते हैं। पर त्यागराज की वाङ्मय तपस्या के पीछे इतना सात्विक शिव संकल्प था कि सारा तेलुगु साहित्य ही उन दिनों तंजावूर में प्रव्रजन-सा कर गया था जहाँ पर त्यागराज की साधना चल रही थी। जब स्वरार्णव ही स्वयं पंचनद के स्वर सम्राट की खोज में चल पड़ा तो क्या आश्चर्य है कि तेलुगु साहित्य भी संत त्यागराज के पद-समीप पहुँच गया हो। विजयनगर के साम्राज्य के पतन के बाद तेलुगु साहित्य के विकास के लिए कोई अनुकूल वातावरण आंध्र प्रांत में नहीं रहा। कुछ तो प्राचीन परम्परा का साहित्य इतना रुढिबद्ध हो गया था

कि जन-साधारण को उससे न तो कोई मनोरंजन होता था, न ज्ञानवर्द्धन। इसलिए तेलुगु के कवियों को मथुरा, तंजावूर आदि प्रान्तों में जा कर राजाश्रय में अपनी कविता को सजाना और सवारना पड़ा था। राजा लोग प्रायः शृंगार रस को व्यंजित करने वाली सरस वासनामय रचनाओं को पसंद करते थे और राज-कवि इसी वासना की उपासना में लग गए। इस प्रकार के शुद्ध पार्थिव पर्यावरण में पंचनदब्रह्म के पौत्र त्यागराज का आविर्भाव हुआ था। स्पष्ट है कि यह अकारण नहीं हुआ था। कारण जन्मा संत त्यागराज की तपस्या ने सारे वायुमण्डल को अपनी स्वर साधना से लोकोत्तर माधुर्य प्रदान किया था। चारों ओर सही दिशा खो बैठे साहित्यिक मनीषियों को देखकर भक्त त्यागराज को दया आई और उन्होंने स्वर-लय-राग की त्रिवेणी में से रामभक्ति का एक ऐसा तीर्थ खोज निकाला जो पंडित, मूर्ख सब के उद्धार का साधन बने। वे सच्चे अर्थों में स्रष्टा और द्रष्टा थे।

अपने इस जीवन-लक्ष्य से वे भलीभांति परिचित थे। आत्मप्रत्यय उनमें इतना प्रबल था कि वे अपने आराध्य राम को भी सतर्क करते हुए कहते हैं—"मेरे प्रभु राम। यह मत समझिए कि मैं और किसी काम के लिए पैदा हुआ हूँ। आपका अंतःकरण जानता है कि मैंने क्यों जन्म लिया है। वाल्मीकि आदि महर्षियों ने आपका गुण-गान किया तो उससे मेरी आकांक्षा कैसे पूरी होगी ?" कहा जाता है, वाल्मीकि ने जिस प्रकार चौबीस हजार श्लोकों में रामायण की रचना की थी, उसी प्रकार त्यागराज ने भी चौबीस हज़ार गीतों में राम का गुणगान किया था। पर उन दिनों में छपाई जैसे सुरक्षा-साधन नहीं थे, इसीलिए त्यागराज के सभी गीत आज हमें नहीं मिलते। उनके शिष्यों में उनका साहित्य बिखर गया है। उन्होंने अपने सारे गीत अपने शिष्यों में बाँट दिये। उनमें से कुछ लोगों ने उन्हें सुरक्षित रखा और कुछ लोगों के पास सुरक्षा का कोई साधन नहीं था। बाद में उनकी शिष्यपरम्परा में प्रचलित गीतों का संकलन करने के अनेक प्रयास किए गए और फलस्वरूप लगभग सात सौ गीत आज निश्चित रूप से त्यागराज के माने जाने योग्य मिलते हैं। यह भी कोई कम उपलब्धि नहीं है। इस दिशा में और अधिक अनुसंधान होना चाहिए।

इन प्रकीर्ण गीतों के अलावा त्यागराज ने तीन संगीत रूपक भी लिखे थे। इनमें 'प्रह्लाद भक्ति विजय' और 'नौका चरित्र' अत्यन्त प्रसिद्ध हैं।

'प्रह्लाद भक्ति विजय' में भक्त प्रह्लाद की भक्ति भावना का वर्णन है जिसमें त्यागराज का भक्त हृदय प्रतिबिम्बित है। इस संगीत रूपक के गीत प्रायः गान-सभाओं में और भजन-मण्डलियों में गाए जाते हैं। 'नौका चरित्र' में गोपियों की अपने परम आराध्य श्री कृष्ण के चरणों में आत्मसमर्पण की भावना का वर्णन है। कथावस्तु एक नवीन कल्पना पर आधारित है, श्रीकृष्ण गोपियों के साथ नौका-यात्रा पर चलते हैं। गोपियाँ अपने को कृष्ण की अनन्य आराधिकाएँ मानती हैं। इस अनन्यता की परीक्षा करने के लिए कृष्ण नौका में एक छेद बना लेते हैं जिसमें से पानी अन्दर पहुँच जाता है और धीरे-धीरे नाव डगमगाने लगती है। नटखट कन्हैया सलाह देता है कि अपने वस्त्रों से छेद को भर दो तो नाव डूबने से बचेगी। गोपियाँ पहले सकुचाती हैं। बाद में वे अपनी लाज को भी नाथ के चरणों में अर्पित कर निर्वसन बन जाती हैं। अन्त में श्रीकृष्ण की कृपा उन्हें प्राप्त होती है। यह कल्पना भागवत में नहीं है। बंगला साहित्य में इस प्रकार के कुछ लोक नाटक मिलते हैं। हो सकता है, चलती फिरती भजनमण्डलियों के माध्यम से त्यागराज ने ऐसी कोई कहानी सुनी हो।

एक तीसरा रूपक 'सीताराम विजय' नाम का उनका बताया जाता है पर वह अब तक अप्राप्य है। यद्यपि ये रूपक कहे जाते हैं, फिर भी गेय रूप में ही ये अधिक प्रसिद्ध हैं। इनकी अभिनेयता का प्रयोग अब तक नहीं हुआ है। त्यागराज की यह सारी साधना पंचनद क्षेत्र के पावन वायुमण्डल में ही सम्पन्न हुई थीं। उनका पर्यावरण उनके पारिवारिक जीवन और पंचनदीश्वर के सान्निध्य तक सीमित है। उनको जो भी प्रेरणा मिली, वह अंतरतम के आराध्य से मिली और कुछ संयोग से तिरुवैयार पधारे साधु-सन्तों और महात्माओं से। वे अपने आपमें सन्तुष्ट स्थितप्रज्ञ थे जिनमें न यश की लालसा थी और न वैभव की आकांक्षा। उनकी निश्चित धारणा थी कि सारे संसार की पार्थिव 'निधि' से राम की 'सन्निधि' कहीं अधिक श्रेयस्कर और कैवल्यकारिणी है। जैसे उनके जीवन में, वैसे उनकी साधना और रचनाओं में भी प्रशान्त शीतलता, प्रांजल मनोज्ञता और परम पावन सरलता पग-पग पर दृष्टिगोचर होती है।

परिचय और पर्यटन

'तदेजति तन्नैजति तद्दूरे तदुवंतिके'—ईश

संसार में रहते हुए भी संसार से दूर और स्थितप्रज्ञ होते हुए भी विश्व वेदना की विकल रागिनी से अवगत त्यागराज का एकांत और प्रशांत जीवन चराचर जगत् से परे विचरण करने वाली चिरंतन चैतन्य धारा का जीता-जागता प्रतीक है। पचनद क्षेत्र में नादब्रह्म की उपासना में तल्लीन त्यागराज को कहीं बाहर जाने की आवश्यकता प्रतीत नहीं हुई, पर उनकी तपस्या की किरणों के आलोक से पुलकित गुणज्ञ गायक तिरुवैयार के मत को देखने के लिए लालायित हुआ करते थे। दूर-दूर से लोग त्यागराज से मिलने, उनका मधुर गायन सुनने और पचनदीश्वर का अनुग्रह पाने प्राय: प्रतिदिन तिरुवैयार आया करते थे। इस प्रकार कुछ ही दिनों मे त्यागराज का भजन मंदिर भक्तों और गायकों का तीर्थस्थान बन गया। प्रभात में प्रभु के प्रबोध गीत से लेकर रात की एकांत सेवा तक ध्यान आवाहन, आसन, स्नान, पान, धूप, दीप, नैवेद्य आरती आदि कई कैंकर्य और कार्यक्रम नियमित रूप से सम्पन्न होते थे और प्रत्येक प्रसंग पर त्यागराज अपना नया पुराना कोई गीत गाकर पूजा के अवसर पर उपस्थित भक्त समाज को भाव-विभोर किया करते थे।

जब तक पिताजी जीवित थे, आजीविका की कोई विशेष चिन्ता नहीं थी। उसके बाद भी जो कुछ पैतृक सपत्ति बची थी, उसी से सत त्यागराज का सरल जीवन बड़े आनन्द और आत्मतोष के साथ व्यतीत होता था। प्रभु की सेवा में भक्तों की ओर से जो भी प्रेमोपहार प्राप्त होता था, उसी मे त्यागराज के अपने छोटे-से परिवार और भक्त-परिवार का भी पालन पोषण होता था। शिष्यों की संख्या भी दिन प्रति दिन बढ़ने लगी। बालाजीपेट वेंकटरमण भागवतार त्यागराज के प्रिय शिष्यों में से थे। वेंकटरमण जी कुछ मोटे तगड़े शरीर के थे और गुरु की उन पर विशेष अनुकम्पा थी। पर ज्ञान-ग्रहण में वे कुशाग्र नहीं थे। इस पर त्यागराज बहुत चिंतित रहा करते थे और एक दिन उन्होंने भगवान से प्रार्थना की कि किसी प्रकार वे इस

आज्ञाकारी शिष्य पर कृपा करें ताकि वह शुश्रूषा में प्रकट श्रद्धा के अनुरूप गान कला में कौशल भी प्राप्त करे। प्रभु ने गुरु की प्रार्थना सुनी और दूसरे ही दिन से वेंकटरमण जी की ग्रन्थि खुल गई और कुछ ही दिनो में वे गुरु के योग्य शिष्य बन गए। शरीर से हृष्ट पुष्ट होने के कारण सहपाठी उनको हंसी मजाक में 'गणपति' कहा करते थे और जब कभी गुरुजी के घर में कोई श्रमसाध्य कार्य करना पड़ता था तो वेंकटरमण उर्फ गणपति का तत्काल स्मरण किया जाता था। त्यागराज के द्वारा समय-समय पर रचे गए गीतों को वही लिपिबद्ध भी किया करते थे। इस विषय में भगवान व्यास के लिपिकार विघ्नेश्वर के समान उन्होंने अपने गुरु त्यागराज की सेवा की। त्यागराज के जीवन से सम्बन्धित अनेक अभिलेख बालाजीपेट की पांडुलिपियों में ही प्राप्त हुए हैं।

गुरु के रूप में त्यागराज अत्यन्त उदार थे। तंजावूर के राजदरबार का एक द्वारपालक एक दिन प्रातःकाल जब त्यागराज नदी में स्नान करने जा रहे थे तो उनके पीछे-पीछे चलने लगा। संकोचवश वह बिना कुछ कहे चुपचाप चला जा रहा था तो नदी के पास पहुँचने पर त्यागराज ने स्वयं उससे पूछा कि तुम क्या चाहते हो। दरबान ने सकुचाते हुए कहा—"महाराज! मैं रोज आपका भजन गान सुनता हूँ और स्वयं गाने का भी प्रयत्न करता हूँ। पर आप स्वयं मुझे कोई गाना सिखा सकें तो मैं अपने को धन्य समझूँगा।" त्यागराज ने मुस्कुराकर कहा—"जो गीत तुम्हें आता हो, गाकर सुनाओ।" दरबान का गायन संत ने बड़े ध्यान से सुना और उसकी क्षमता के अनुरूप एक छोटा-सा गीत (नी दयचे—राग यदुकुल कांभोजी) बना कर उसे वहीं पर सिखा दिया। चींटी से लेकर ब्रह्म तक के सभी पदार्थों में परमार्थ का दर्शन करने वाले पहुँचे हुए सन्त में ही इतनी उदारता पाई जा सकती है।

एक और घटना है जो त्यागराज की उदारता के साथ-साथ उनके अमोघ आत्मसंयम को प्रकट करती है। उन दिनों बोम्मलाटा नाम की एक लोक नाट्य परम्परा बहुत प्रचलित थी। त्रिभुवनम् स्वामिनाथ अय्यर के नेतृत्व में बोम्मलाट का एक प्रदर्शन तिरुवैयार में संपन्न हुआ था। त्यागराज ने सुना था कि स्वामिनाथ की नाट्य मंडली ने आनन्दभैरवी राग की बड़ी साधना की और इस रागिनी में उनका प्रसिद्ध गीत 'मथुरा नगरि लो' सुनने के लिए लोग काफी भीड़ में इकट्ठे हो जाते थे। त्यागराज को भी सुनने की इच्छा हुई तो वे भी दर्शकों के बीच में कहीं बैठे थे। प्रदर्शन के अन्त में

त्यागराज ने स्वयं स्वामिनाथ के पास जा कर उनकी मंडली के गायन की प्रशंसा की। इस पर स्वामिनाथ ने त्यागराज से एक वर मांगा कि वे आगे चल कर आनन्दभैरवी में कोई गीत न लिखें जिससे स्वामिनाथ की नाट्यमंडली का इस क्षेत्र में प्राप्त यश बना रहे। उदारमना त्यागराज ने स्वामिनाथ के आग्रह को अविलम्ब स्वीकार किया। उस समय तक त्यागराज ने आनन्द भैरवी में तीन गीत लिखे थे, पर बाद में उस क्षेत्र को एकदम छोड़ दिया था। सैकड़ों राग-रागिनियों के कुशल शिल्पी का यह राग-त्याग उनको (त्यागराज को) स्वनामधन्य बना देता है।

त्यागराज के मन में किसी के प्रति ईर्ष्या या द्वेष की भावना कभी नहीं थी, पर कुछ लोग उनसे ईर्ष्या करते थे। विशेष कर उनकी साधना के अवसर पर स्पर्द्धालु गायक उनकी टीका-टिप्पणी किया करते थे। एक दिन वे अपने प्रभु के कीर्तन में कोई राग आलाप कर रहे थे तो बाहर कुछ लोग ध्यान से सुन रहे थे। काफी देर तक लोग सुनते रहे पर उनकी समझ में नहीं आया कि वह कौन-सा राग था जिसका वे आलाप कर रहे थे। वे अपनी शंका का समाधान करने त्यागराज से मिले और उस गीत और राग के बारे में पूछने लगे तो भक्तिभाव में लीन त्यागराज ने चौंक कर कहा—"मुझे पता नहीं था कि मैं कुछ गा भी रहा था।" इस पर उन मित्रों ने कहा, "हाँ, आप अवश्य गा रहे थे पर वह गाना कई रागों में कई राहों में जा रहा था और हमने कभी ऐसा राग नहीं सुना तो हम सोच रहे थे कि यह कोई बहुराही (बहुदारी-तेलुगु में राह को 'दारि' कहते हैं) राग है।" त्यागराज ने मुस्कुरा कर कहा, "ठीक है, इसे ऐसा ही समझिए तो क्या आपत्ति है।" तब से बहुदारी राग का कर्णाटक संगीत में समावेश हो गया। त्यागराज का प्रसिद्ध गीत 'ब्रोव भारमा' इसी राग में गाया जाता है। स्वतंत्र चेता कलाकार का स्वच्छन्द गायन भी एक अपूर्व आदर्श का सृजन कर सकता है, यह बात इस घटना से स्पष्ट होती है।

इसी प्रकार संगीत के क्षेत्र में प्रख्यात अनेकों कलाकार त्यागराज से मिल कर उनका आशीर्वाद पाने तिरुवैयार जाया करते थे। एक बार षट्काल गोविन्द मारार नाम के प्रसिद्ध गायक त्यागराज से मिलने गए थे। उनकी विशेषता यह थी कि वे किसी भी गीत को अतिविलंबित, विलंबित, मध्यम, द्रुत और अतिद्रुत-सभी कालों में गाने में पटु थे। इसीलिए उनके नाम के पहले षट्काल का उपनाम जुड़ा हुआ था। त्यागराज के सामने बैठ कर जब

2

उन्होंने जयदेव की प्रसिद्ध अष्टपदी 'चंदन चर्चित नीलकलेवर पीतवसन वन-'माली' का गायन छह कालों में सुनाया तो त्यागराज बहुत प्रसन्न हो गए। वह एकादशी का दिन था और त्यागराज के घर में उस दिन भजन कीर्तन का विशेष आयोजन था। गोविंद मारार का हृदयग्राही गायन सुन कर त्यागराज ने अपने शिष्यों से 'श्रीराग' में अपना पंचरत्न गीत 'एंदरो महानुभावुलु' अंदरिकि वंदनमुलु (धन्य धन्य शत शत बड़भागी सबको अंजलि सबको प्रणाम) गाने को कहा और स्वयं उस गायन में सम्मिलित हो कर गोविंद मारार की असाधारण प्रतिभा का हार्दिक अभिनन्दन किया। कहा जाता है कि षट्काल के गायक गोविंद मारार ने जब अपना गायन प्रस्तुत किया तो त्यागराज के शिष्य बालाजी पेट कृष्ण स्वामी भागवतार (वेंकटरमण भागवतार के पुत्र) ने किन्नरी (वाद्ययंत्र) में उनकी संगति की थी। षट्काल गायक उसके बाद कुछ दिन तक त्यागराज के घर में उनके विशेष अतिथि के रूप में रहे और अन्त में सन् १८४३ में पंढरपुर में पांडुरंग के सान्निध्य में परंधाम पहुँच गए।

तंजावूर रामाराव त्यागराज के इष्ट शिष्यों में से थे और अवस्था में उनसे दो वर्ष छोटे थे। सभी शिष्यों में वरिष्ठ होने के कारण सब लोग उन्हीं को वरिष्ठ भी मानते थे। वैसे गुरुजी से जब कभी कोई ऐसी बात कहनी होती जिसे कहने में दूसरों को संकोच होता हो, तो रामाराव को ही सब लोग आगे बढ़ाते थे। वे हमेशा अपने गुरुजी के साथ ही रहा करते थे। त्यागराज भी उनको आत्मीय समझकर उनको अपने मन की बातें बताया करते थे। इसीलिए उनके सहपाठी उनको 'छोटा त्यागराज' कहा करते थे।

त्यागराज का यश धीरे-धीरे अपने शिष्य समाज को पारकर दूर-दूर तक फैलने लगा। विशेष कर आन्ध्र के प्रसिद्ध गायक तिरुवैयार के संत त्यागराज के सम्बन्ध में सुन कर उनसे मिलने के लिए बहुत ही उत्कंठित हुआ करते थे। आंध्र के गुंटूर जिले में उन दिनों तूमु नृसिंहदास नाम के एक प्रसिद्ध संत और गायक रहते थे। उनकी अपनी एक भजन पद्धति होती थी जो कि आंध्र के कई इलाकों में आज भी लोकप्रिय है। उनके मन में इच्छा पैदा हुई कि तिरुवैयार के संत के दर्शन कर लिए जाएँ। सन् १८२१ में जब वे तिरुवैयार पहुँचे तो त्यागराज ने उनका हार्दिक स्वागत किया और अपने मधुर गायन से उनको प्रसन्न और परितुष्ट किया। त्यागराज के मुंह से उनकी 'कृतियाँ' (कीर्तन) सुन कर नृसिंहदास आनन्द के आंसू बहाया करते थे और उस महागायक की प्रशंसा में उन्होंने स्वयं कई गीत लिखे।

प्राचीन काल में दक्षिण के भक्त काशी यात्रा को अपने जीवन की बड़ी उपलब्धि मानते थे। अनेकों भजन मण्डलियाँ भगवान का गायन करते-करते पैदल ही काशी पहुँच जाती थीं और इस प्रकार काशी के संत और महात्मा रामेश्वरम् तक पहुँच जाते थे। इन संतों, महात्माओं और भक्तों के माध्यम से दक्षिण का संत साहित्य उत्तर में और उत्तर का दक्षिण में पहुँचा करता था। इसी प्रकार त्यागराज की 'कृतियाँ' काशी तक पहुँच गईं। उन दिनों में गोपीनाथ भट्टाचार्य काशी के प्रख्यात संगीतज्ञ और गायक थे। उन्होंने जब त्यागराज की कृतियाँ यात्रियों के मुँह से सुनीं, तो वे बड़े प्रसन्न और पुलकित हो उठे। उन कृतियों के कर्ता को देखने की इच्छा उनके मन में बलवती बन गई। सोते-जागते चलते-फिरते उनके कानों में उसी संत की कृतियाँ और उसी की कल्पित आकृति अपने अमिट बिम्ब बनाने लगीं। आखिर वे दक्षिण भारत की यात्रा पर चल पड़े और चलते-चलते तिरुवैयार तक पहुँच गए। पंचनदक्षेत्र में स्वरार्णव की लहरों में तरंगायित संत का मुख मण्डल देखकर उनके तृषित नयन तृप्त हो गए। त्यागराज के गायन ने उनको मंत्रमुग्ध कर दिया। इतनी दूर से आए हुए गायक भट्टाचार्य को देखकर त्यागराज ने अपने आराध्य राम को आभार प्रकट करते हुए कहा—"दशरथ नन्दन राम! मैं आपके इस उपकार से कैसे उऋण हो सकता हूँ। न मालूम कहाँ-कहाँ आपने मेरी आवाज पहुँचाई और किस-किस को मेरे सपने दिखलाए।" इस आशय का गीत "दाशरथी! नी ऋणमु दीर्च ना तरमा" राग तोड़ी में जब त्यागराज गाने लगे तो भट्टाचार्य संत त्यागराज की इस आपातमधुर आशु रचना-शक्ति पर चकित हो गए। इसी प्रकार कुछ दिन वे तिरुवैयार के संत के सान्निध्य का आनन्द लेकर फिर अपनी यात्रा पर चल पड़े।

"नन्दनारचरित्र" के प्रख्यात लेखक और तमिल के प्रसिद्ध संगीतकार गोपालकृष्णभारती भी त्यागराज की नाद-साधना के बारे में सुन कर उनसे मिलने गए। भारती भीतर से जितने प्रतिभाशाली थे, बाहर से उतने प्रभावशाली नहीं दिखाई देते थे। जब वे त्यागराज से मिलने गए, तो त्यागराज ने उनको मायावरम का निवासी जानकर उनसे पूछा, "आप गोपालकृष्णभारती को जानते हैं?" भारती ने जब बड़ी विनम्रता से जवाब दिया, "मैं वही भारती हूँ।" तो त्यागराज को आश्चर्य हुआ कि कहाँ वह सुकृती और कहाँ यह आकृति! खैर, बाहर के वारि-विकार को छोड़कर भीतर की गुणपयस्विनी का सार ग्रहण करने वाले सन्त-हंस त्यागराज ने उनका आदर सत्कार किया और

अपने कई गीत उनको सुनाए। प्रसंगवश त्यागराज ने उनसे पूछा, "आपने राग आभोगी में कोई गीत लिखा है ?" भारती निरुत्तर थे। पर उसी रात को भारती ने राग आभोगी में एक गीत लिख कर त्यागराज को सुनाया तो उन्होंने प्रसन्न हो कर उनके उज्ज्वल भविष्य की मंगलकामना प्रकट कीं। सद्गुरु का आशीर्वाद पा कर भारती घर लौट गए। जब से वे त्यागराज के संपर्क में आए तब से उनमें एक नई चेतना-सी जाग पड़ी और उनके गीतों में एक नई रोशनी आ गई। इस प्रकार सन्त त्यागराज के संपर्क में जो भी आए, उनमें मधुर रागिनी झंकृत होने लगी। पत्थर में भी प्राणों का स्पंदन पैदा करने वाले राम के आराधक के स्पर्श में सचमुच कोई पारस पत्थर का ही चमत्कार था।

जब विशेष पर्वों पर त्यागराज की भजन-मंडली नगर संकीर्तन के लिए शहर की सड़कों पर प्रभु का गुणगान करते निकल पड़ती थी तो लोग अपनी आँखों का मालिन्य मिटाने के लिए घर से बाहर आया करते थे और घंटों तक भजन के कार्यक्रम में भाग लिया करते थे। बाहर खुले मैदान में या घर के अन्दर जब भजन-कीर्तन का कार्यक्रम चलता था तब धर्मपरायण श्रोता और भक्त दान-पात्र में यथाशक्ति चावल, दाल और अन्य खाद्य सामग्री अर्पित किया करते थे क्योंकि मुद्रा धन स्वीकार्य नहीं था। इसी से त्यागराज अपने परिवार का पालन-पोषण कर लेते थे जिसमें शिष्य परिवार और अतिथि परिवार भी सम्मिलित थे। पर वे राजाश्रय से बहुत दूर रहते थे—यहाँ तक कि राजा का पैसा तक स्वीकार नहीं करते थे। एक बार राजा शरभोज ने अपने आदमियों के ज़रिए स्वर्ण मुद्राएँ भेजीं तो जिस दान-पात्र में उनकी स्वर्णमुद्राएं डाली गई, उनकी सारी चीज़ें उन्होंने सड़क पर छोड़ दीं। राजा शरभोज बहुत चाहते थे कि त्यागराज उनकी प्रशंसा में कुछ गीत लिखें। पर त्यागराज 'नरस्तुति' से एकदम पराङ्मुख थे। उन्होंने राजा के अनुरोध को साफ-साफ अस्वीकार करते हुए कहा—"इन दुराचारी लोगों के पास जा कर मैं कैसे कहूँ कि आप हमारे मालिक हैं (दुर्मार्ग चराधमुलनु दौर नीवन जाल)।" इसी प्रसंग पर उन्होंने एक गीत लिखा था—"निधि चाल सुखमा रामुनि सन्निधि सेव सुखमा, निजमुग बल्कु मनसा।" (सच्ची बात बता रे मन तू किस में सच्चा सुख है ? रघुपति की सन्निधि में या निधि में किससे मिलता सुख है ?) इसी गीत ने त्यागराज को सदा के लिए आत्मसम्मान का धनी बना दिया था और इसी निरीहता ने उनको महापुरुष के पद पर प्रतिष्ठित किया था।

तिरुवानकूर के राजा स्वाति तिरुनाल स्वयं लेखक और गायक थे। उन्होंने त्यागराज के शिष्यों के द्वारा उनके कई गीत सुने। वे चाहते थे कि त्यागराज उनके दरबार में आकर अपने गीत सुनाएँ। उन्होंने इसके लिए बहुत प्रयत्न किया, अपने यहाँ के कई प्रसिद्ध गायकों को भेजा जिनमें वडिवेल नाम के गायक ने त्यागराज को सन्तुष्ट करने में काफी सफलता प्राप्त की। वडिवेल के वीणावादन पर त्यागराज इतने प्रसन्न हो गये कि उनको घर बुला कर बोले कि आप जो चाहें वह मैं देने को तैयार हूँ। इस पर वडिवेल ने तुरन्त कहा "महाराजा स्वाति तिरुनाल आपसे मिलने को बड़े उत्सुक हैं। अगर आप कष्ट करें...।" त्यागराज धर्मसंकट में पड़ गये और कुछ सोच कर बोले, "हाँ, हम जरूर मिलेंगे, पर इस लोक में नहीं, दूसरे लोक में क्योंकि हम दोनों के आराध्य एक ही है।" वडिवेल को निराश होकर लौटना पडा। स्वाति तिरुनाल चाहते तो त्यागराज के यहाँ स्वयं जाकर उनसे मिल सकते थे। पर न तो वे तिरुवैयार गये, न त्यागराज तिरुवांकूर गये।

तिरुवैयार के संत को अपने यहाँ बुलाने में सबसे पहले कांची के स्वामी उपनिषद् ब्रह्मेंद्र को सफलता प्राप्त हुई। स्वामी जी राम नाम के मर्मज्ञ उपासक और प्रचारक थे और संगीत के अनन्य प्रेमी। त्यागराज के पिता रामब्रह्मम उनके गुरु-भाई थे। अपने सहपाठी के पुत्र को यशस्वी गायक और मनस्वी भक्त के रूप में पाकर स्वामी जी को बड़ी प्रसन्नता हुई। वे त्यागराज से मिल कर उनकी प्रतिभा का प्रत्यक्ष प्रमाण प्राप्त करना चाहते थे। पर सौ वर्ष की आयु में उनके लिए यह संभव नहीं था। इसलिए उन्होंने अपनी विवशता प्रकट करते हुए त्यागराज के नाम प्रेषित श्रीमुख (पत्र) में उनसे यह अनुरोध किया कि वे एक बार कांची पधार कर अपने पिता के सहाध्यायी की मनोकामना पूरी करें और साथ ही कांची के प्रभु वरदराज का आशीर्वाद भी प्राप्त कर लें। सर्वसंग-परित्यागी का यह स्नेहपूर्ण अनुरोध टालने का साहस त्यागराज नहीं कर सके। उन्होंने स्वामी जी का अनुरोध स्वीकार किया। तुरन्त त्यागराज की यात्रा का कार्यक्रम बन गया। उनके शिष्यों ने यात्रा की सारी व्यवस्था की और पालकी में सवार होकर त्यागराज कांची के लिए निकल पड़े। उनके साथ उनके प्र[illegible] बालाजीपेट वेंकटरमण भागवतार, तंजावूर रामाराव, तिलस्थानम् [illegible] अय्यगार आदि भी थे।

56225

कांची में स्वामी जी के सान्निध्य में त्यागराज अपने शिष्यों के साथ कुछ दिन रहे और प्रतिदिन भजन कीर्तन और विशेष गायन से स्वामी जी को सन्तुष्ट करते रहे। संत त्यागराज के भजन कार्यक्रम को देखने और सुनने के लिए सैकड़ों लोग आया करते थे। कांची में रहते समय और कांची से फिर तिरुवैयार वापस आने के बाद उनके और अनेक शिष्य बन गए और इस प्रकार इस पर्यटन के द्वारा उनका परिचय क्षेत्र और व्यापक हो गया। जिन लोगों ने इस संत के बारे में पहले सुन रखा था, वे उनको प्रत्यक्ष देख कर और उन्हीं के श्रीमुख से मधुर गायन सुन कर भाव विभोर हो गये।

त्यागराज की इस यात्रा का प्रमुख उद्देश्य तो केवल कांची में स्वामी उपनिषद ब्रह्मेंद्र से मिलने और भगवान वरदराज का आशीर्वाद पाने का था। पर उनके शिष्य अपने गुरु की यात्रा का पूरा लाभ उठाना चाहते थे। कांची से निकट ही बालाजीपेट था जहाँ पर त्यागराज के शिष्य वेंकटरमण भागवतार और उनके पुत्र कृष्णस्वामी भागवतार रहते थे। दोनों के अनुरोध पर त्यागराज बालाजीपेट भी गये। बालाजीपेट में त्यागराज बारह दिन तक रहे और अन्तिम दिन में उनका जुलूस निकाला गया। वेंकटरमण भागवतार के शिष्य मैसूर सदाशिव राव ने त्यागराज की स्तुति में एक सुन्दर गीत (त्यागराज स्वामि वेडलिन) प्रस्तुत कर अपने परम गुरु के प्रति श्रद्धांजलि अर्पित की।

दक्षिण भारत के प्रसिद्ध यात्रा स्थल तिरुपति में बालाजी के दर्शन करना भी त्यागराज की यात्रा के कार्यक्रम में सम्मिलित था। भगवान वेंकटेश्वर (बालाजी) शेषाकार में फैले हुए सात ऊँचे-ऊँचे पहाड़ों के ऊपर स्थित हैं और उन दिनों यात्रियों को पहाड़ के ऊपर तक पैदल ही जाना पड़ता था। त्यागराज अपने शिष्य-परिवार के साथ शेषाचल के ऊपर पहुँचे और स्नानादि से निवृत्त होकर भगवान के दर्शन करने मन्दिर में गये तो वहाँ ठाकुर जी के सामने परदा लगा हुआ था। त्यागराज को बाहर का वह परदा देख कर भीतर का अवरोध याद आया और गाने लगे—"अन्तर का मत्सर पट खोलो वेंकटपति अधिपति तिरुपति के।" (तेरदीयग रादा ना लोनि मत्सरमनु)। कहते हैं कि संत त्यागराज के यह गीत गाते ही भक्त और भगवान के बीच का परदा अपने आप हट गया था। कुछ ही क्षणों में वहाँ के लोगों को पता चला कि यह वही प्रसिद्ध गायक त्यागराज थे जो भगवान के दर्शन करने मन्दिर में पधारे थे। पुजारी और प्रबन्धक विशेष सम्मान के साथ

त्यागराज को मन्दिर के अन्दर ले गये और भक्त त्यागराज ने भाव विभोर होकर भगवान वेंकटेश्वर की स्तुति में कई गीत आशुधारा में गाये।

संत त्यागराज जहाँ कहीं जाते, वहाँ के मन्दिर अवश्य देखते और उन मन्दिरों में प्रतिष्ठित देवी देवताओं की सुन्दर मूर्तियों का आशुगीतों में अवश्य गुणगान करते। जब वे कांची में थे, तब भगवान वरदराज और श्री कामाक्षी देवी की स्तुति में उन्होंने दो प्रसिद्ध गीत 'वरदराज निनु कोरि वच्चितिरा' (वरदराज मैं आया चल कर तब दर्शन से प्रेरित होकर) और 'विनायकुनि वलेनु ब्रोववे (माँ गणेश की भांति मुझे भी...) "आज भी लोग बड़ी तत्परता से गाते हैं। इसी प्रकार जब वे शोलिंगर में लक्ष्मीनरसिंह के मन्दिर में गये तो वहाँ पर उन्होंने राग बिलहरी में 'श्री नरसिंह मां पाहि' कह कर गद्गद कंठ में प्रभु का गुणगान किया। श्री कालहस्ती नाम के पुण्य-धाम के आसपास बहने वाली स्वर्णमुखी नदी के तट पर विष्णु का एक मन्दिर है। त्यागराज वहाँ भी पहुँचे और वहाँ के अधिष्ठाता भगवान विष्णु को सम्बोधित करते हुए गाने लगे, 'और कौन मेरा है पालक, प्रभुत् ही मेरा उद्धारक।' (नीवे गानि नन्नेवरु गातुरा।) यह गीत भी राग बिलहरी में है। ऐसा लगता है, राग बिलहरी के प्रति त्यागराज के मन में विशेष अनुराग है।

अपनी यात्रा के दौरान जब वे पुत्तूर नाम के स्थान पर पहुँचे, वहाँ पर एक मृत कलेवर के पास बैठ कर रोती हुई स्त्री को देख कर उन्होंने प्रभु से प्रार्थना की कि 'हे प्रभो! आप मेरे जीवन के एक मात्र सहारे हैं, मेरी तपस्या के फल हैं, मेरी आँखों की ज्योति हैं, मेरी नासिका के परिमल हैं और मेरी भावना के मूर्त रूप हैं।' कहा जाताहै, राग बिलहरी में गाया गया यह मधुर गीत सुनते ही मरा हुआ आदमी जी उठा था। इस प्रकार की कई कहानियाँ त्यागराज के सम्बन्ध में प्रचलित हैं। उनमें प्राय: कल्पना और अतिरंजना का स्वाभाविक पुट होने पर भी सत्य से वे एकदम दूर भी नहीं हैं।

जब त्यागराज कांची में थे तो स्वामी उपनिषद् ब्रह्हेंद्र ने उनसे अपने एक शिष्य कोवूर सुन्दरेश मुदलियार का परिचय कराया था। सुन्दरेश मुदलियार मदरास के एक संपन्न नागरिक थे और त्यागराज को अपने यहाँ आमंत्रित करना चाहते थे। स्वामी जी के माध्यम से आमंत्रण मिलने के कारण त्यागराज ने उसे सहर्ष स्वीकार किया। मदरास में मुदलियार के निवास पर

त्यागराज ने आठ नौ दिन बिताए और प्रतिदिन नियमित रूप से भजन कीर्तन का कार्यक्रम चलता था। लगातार आठ दिन तक त्यागराज ने राग देवगांधारी का आलाप किया तो श्रोता मंत्रमुग्ध हो कर सुनते रहे। मदरास में पार्थसारथी का मन्दिर काफी प्रसिद्ध है। वहाँ भी त्यागराज गए थे और ठाकुर की शोभा यात्रा का वर्णन करते हुए उन्होंने राग असावेरी में "सारि वेडलिन पार्थसारथिनि गनरे" का प्रसिद्ध गीतगा कर सुनाया था। सुन्दरेश मुदलियार का जन्म स्थान कोवूर था। इसलिए वे चाहते थे कि त्यागराज कोवूर भी पधारें और वहाँ के स्वामी सुन्दरेश के भी दर्शन करें। त्यागराज सहमत हुए। कोवूर में सुन्दरेश की स्तुति में त्यागराज ने पाँच सुन्दर गीत लिखे थे जो "कोवूर पंच रत्न गीत" के नाम से प्रसिद्ध हैं।

त्यागराज ने सुन्दरेश मुदलियार का आमन्त्रण स्वीकार कर उनको अनुगृहीत किया था, इसके लिए मुदलियार उनका यथोचित सत्कार करना चाहते थे। पर त्यागराज तो पैसा नहीं लेंगे, यह उनको मालूम था। फिर भी उनके शिष्यों से परामर्श कर एक हज़ार स्वर्ण मुद्राएँ त्यागराज की पालकी में रखवा दीं और उनके प्रधान शिष्य रामाराव से कहा कि भगवान रामभद्र की आराधना में इनका विनियोग किया जाए। त्यागराज को इस बात का बिलकुल पता नहीं था। शिष्यों के साथ त्यागराज तिरुवैयार की ओर चल पड़े। गाँव से बाहर तक मुदलियार भी साथ चले और वहाँ पर अतिथि महोदय से बिदा ले कर घर वापस आए। रास्ते में नागुलापुरम का जंगल पड़ता था जहाँ पर अक्सर चोरों का भय रहता था। त्यागराज के शिष्यों को आशंका थी कि कहीं चोरों के चक्कर में न आएँ। पर गुरुदेव त्यागराज तो निश्चिंत थे क्योंकि उनको न पैसे का पता था और न चोरों का भय। आशंका के अनुसार रास्ते में चोरों ने पालकी का पीछा किया और पालकी ढोने वालों पर मिट्टी के ढेले फेंकने शुरू किए। कुछ ढेले शिष्यों को भी लग गए। शिष्य परिवार में कुछ मानसिक तनाव देख कर त्यागराज ने पूछा तो पता चला कि पालकी में स्वर्णमुद्राएँ रखी गई हैं और चोर उनका पीछा कर रहे हैं। उन्होंने तुरन्त कहा कि ये मुद्राएँ जिनको चाहिए उनको दे दो। पर रामाराव ने बीच में आ कर कहा, "नहीं गुरु जी ! यह तो भगवान का द्रव्य है, इसे कोई छू नहीं सकता।" तब त्यागराज ने कहा, "ठीक हैं, अगर यह भगवान का है, तो वही इसकी रक्षा कर लेगा।" फिर निश्चिंत हो कर त्यागराज राग दरबार में गाने लगे :

मुंदु वेनुक इरु प्रक्कल तोडै
मुरखर हर रारा रारा ॥
एंदुगान नीयंदमु वले रघु
नन्दन वेगमे रारा रारा ॥
चंडभास्कर कुलाब्धि चंद्र को–
दंड पाणियै रारा रारा ॥
अंड गोलुचु सौमित्रि सहितुडं
अमित पराक्रम रारा राम ॥

"हे राम । आगे पीछे और दायें बायें खड़े हो कर हमारी रखवाली करने वाले सुन्दर तन वाले राजकुमार राम ! आ जा, कुछ जल्दी आ जा, अपने धनुष बाण को साथ लिए आ जा, हमेशा अपने साथ-साथ चलने वाले भाई लक्ष्मण को भी साथ लिए आ जा । प्रचंडभास्कर के वंशज स्वामी आ जा ।"

त्यागराज पालकी में बैठे-बैठे गाते रहे और चोर धीरे-धीरे पीछे हटते जा रहे थे । लेकिन वे भागे नहीं जा रहे थे । बात यह थी कि वे अपने सामने दो सुन्दर बालकों को देख रहे थे जो उन पर तीर चलाते जा रहे थे, पर वे तीखे तो थे, पर मीठे भी थे । तीरों की मीठी चोट के प्रलोभन में वे रात भर साथ-साथ चलते रहे । जब प्रभात के समय दोनों राजकुमार अचानक आँखों से ओझल हो गए तो चोरों ने आ कर त्यागराज से पूछा कि वे दोनों बालभट कौन थे । त्यागराज को आश्चर्य हुआ । समझ गए कि राम और लक्ष्मण उनकी पुकार सुन कर सचमुच आ गए होंगे । पर साथ ही पछताने लगे कि उनके दर्शन चोरों को हुआ, अपने को नहीं । उन्होंने चोरों का भाग्य सराहा और चोर भी राम के भक्त बन गए ।

त्यागराज की विजय यात्रा में तिरुवत्तियूर जाने का भी प्रमाण मिलता है । अपने प्रिय शिष्य वीणा कुप्पय्यर के निमंत्रण पर वे तिरुवत्तियूर गए थे । वहाँ-पर त्रिपुर सुन्दरी का मन्दिर था । रोज त्रिपुर सुन्दरी के दर्शन करते और उनकी स्तुति में कोई न कोई गीत गाते । इस प्रकार के पाँच गीत 'देवीपंचरत्न कीर्तन' के नाम से प्रसिद्ध हैं । सावेरी, आरभी, बेगड, कल्याणी और शुद्ध सावेरी में ये पाँचों गीत लिखे गए थे । 'कोवूर पंच रत्न कीर्तन' की भाँति ये भी काफी प्रसिद्ध हैं ।

सब से अधिक प्रसिद्ध पंच रत्न कीर्तन 'घन राग पंचरत्न कीर्तन' कहे जाते हैं जिनमें षट्काल गोविन्द मारार के अभिनन्दन में गाया गया 'एंदरो महानुभावुलु' सम्मिलित है। यह श्रीराम में गाया जाता है। इस रत्न-समुच्चय के अन्य चार गीत हैं—राग नाट में 'जगदानन्द कारक' राग गौल में 'दुडुकुगल', राग आरभी में 'साधिचेने' और राग वराली में 'कन कन रुचि रा'। ये पाँचों गीत घन राग पंच रत्न माने जाते हैं। त्यागराज के सभी गीतों में ये विशेष महत्वपूर्ण माने जाते हैं। संगीत की दृष्टि से इनका महत्व है ही, पर साहित्य भी इनका उच्चकोटि का है।

इस प्रकार महान् गायक जहाँ जहाँ पधारे, वहाँ राग रागिनियो के माधुर्य से सारा वायुमंडल निनादित होता रहा। सन्त त्यागराज के जीवन में शायद ही कोई ऐसा दिन बीता हो जब उनके मन में अपने आराध्य के प्रति कोई नया विचार नहीं आया हो और उनके मुंह से कोई मधुर गीत नहीं निकला हो। उनके जीवन का प्रत्येक क्षण मधुमय था और उनके चरणों से अंकित प्रत्येक कण रागसुधा से सिंचित था। सारे विश्व में व्याप्त परमात्मा राम से वे स्वतंत्रता के साथ कहते हैं—"ब्रोवभारमा राम! भुवन मेल्ल नीवे युंडग?" (राम! क्या आपके लिए मेरा पालन भार-सा बन जाता है? आप तो सारे भुवन में फैले हुए हैं।) वे जहाँ देखते हैं वहाँ राम का रूप दिखाई देता है, जहाँ सुनते हैं, राम की कथा सुनाई देती है। उनकी सारी तपस्या परब्रह्म राम की ओर उन्मुख और उसी के नाम और उसी के रूप में लीन है।

परब्रह्म राम

"राम नाम रमणीय है, राम परम अभिराम"

श्री रामचन्द्र का नाम और उनका रूप त्यागराज के जीवन का सर्वस्व और उनके व्यक्तित्व के अभिन्न अंग हैं। राम से भी राम का नाम उनके लिए अधिक रुचिकर और महत्वपूर्ण था। अपनी जिह्वा पर सदा विराजित राम नाम के मंत्र राज की महिमा का वर्णन करते हुए वे कहते हैं कि रामनाम का सुख बड़े भाग्य से मिलता है क्योंकि वेदांत चर्चा से जो सुख मिलता है और निर्गुण परब्रह्म की उपासना से जो सिद्धि मिल सकती है, उन दोनों से अधिक निःश्रेयस आनन्द रामनाम से मिलता है। नियम और क्षेम का दिव्य धाम रामनाम का दूसरा नाम है। राम से वे केवल इतना ही वर माँगते है उनकी रसना (जीभ) पर निरन्तर राम का नाम विराजमान हो और अपने मन को समझाते हैं कि राम नाम का सार ही उनके जीवन का ध्येय बने।

त्यागराज बचपन से ही राम के अनन्य आराधक रहे। यह नहीं कि जीवन के संघर्ष में घिस-घिस कर बुढ़ापे में लाचार होकर उन्होंने रामनाम का आश्रय लिया हो। त्यागराज दर्शन के मर्मज्ञ समालोचक डा. राघवन ने ठीक ही कहा कि प्रह्लाद की भांति त्यागराज भी आगर्भ भागवत थे। राम का चिंतन उनको अपने दादा और परदादाओं से विरासत में मिली पैतृक सम्पत्ति है जिसे उन्होंने सुरक्षित ही नहीं 'बल्कि यथेष्ट मात्रा में संवर्द्धित भी किया था। उनके पिता रामब्रह्मम्, पितामह गिरिराज कवि और प्रपितामह पंचनद ब्रह्मम्-तीनों राम नाम के समर्थ साधक और आराधक थे और उनका तपस्या का फल त्यागराज को मिला था। वे अपने कई गीतों में अपने इन पूर्वजों का आभार प्रकट करते हैं। इसके अलावा त्यागराज के पिता रामब्रह्मम् के सह-पाठी कांची के स्वामी उपनिषद् ब्रह्मेंद्र राम नाम के ज्ञाता और व्याख्याता थे। उन्होंने राम नाम के रहस्य की विस्तृत व्याख्या करते हुए 'उपेय नाम विवेक' नाम का उद्ग्रंथ लिखा था जिससे त्यागराज अवश्य परिचित और प्रेरित हुए होंगे। उपनिषद् ब्रह्मेन्द्र के अनुसार राम नाम की उपासना साधन और साध्य

दोनों रूपों में की जा सकती है। वह संसरणशील जगत् से मुक्ति पाने का उपाय भी है और अपने में पूर्ण शुद्ध निरपेक्ष 'उपेय' भी है। पहले रूप में वह सविशेष है और दूसरे रूप में निर्विशेष परब्रह्म का वाचक जिस प्रकार प्रणव तत्व के विवेचक उसको परम तत्व का वाचक मानते हैं उसी प्रकार राम के द्रष्टा उसे परम ध्येय अनुसंधेय और उपेय परब्रह्म के रूप में हीं देखते हैं।

यही दृष्टि त्यागब्रह्म की भी थी जिन्होंने अपना सारा जीवन रामनाम के चिंतन, मनन और ध्यान में बिताया था। स्वामी रामकृष्णानन्द की अनुशंसा पर उन्होंने छियानवे करोड़ राम नाम जप कर राम के रूप का साक्षात्कार भी किया था। उनका राम, दशरथ नंदन राम नहीं था। वह परम तत्व का साकार रूप था। राग गरुड ध्वनि में तत्वमेरुग तरमा' नाम के गीत में वे स्पष्ट शब्दों में कहते हैं कि 'तत्वमसि' के वाक्यार्थ ने ही राम का रूप धारण कर लिया है जिसका रहस्य केवल परमार्थ कोविद ही जान सकते हैं। इस गीत में राग गरुड ध्वनि के प्रयोग के पीछे भी एक रहस्य छिपा हुआ है। परम पुरुष के वाहन पन्नगेश्वर की अनुकम्पा से ही अविगत भगवत्तत्व की यह गति अवगत हो सकती है, यही इस राग का अभिप्रेत रहस्य है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि आदिकवि के 'कौसाल्यानन्द-वर्द्धन' राम को त्यागराज ने सर्वांतर्यामी और सर्वातिशायी परब्रह्म के रूप में देखने का सफल प्रयास किया था। इसीलिए वे कभी-कभी यह निर्णय नहीं कर पाते हैं कि चींटी से लेकर ब्रह्म तक शिव, केशव आदि सभी रूपों में प्रेमाकार में व्याप्त परब्रह्म राम को किस रूप में देखा जाए और किस रूप में उनकी आराधना की जाए। राग 'देवामृतवर्षिणी' में त्यागब्रह्म अपने परब्रह्म राम की व्याख्या करते हुए गाते हैं—

> **"एवरनि निर्णयिंचिरि रा निन्नेट्लाराधि चिरिरा नरवरुलु**
> **शिवुडवो माधवुडवो कमलभवुडवो परब्रह्म वो**
> **शिवमंत्रमुनकु मा जीवमु माधव मंत्रमुनकु रा जीवमु**
> **विवरमु तेलिसिन घनुलकु म्रोक्केद वितरण गुण त्यागराजनुत।**

(बुद्धिमान लोगों ने आपको किस रूप में पाया है या आपका रूप-निर्णय कैसे किया है? आप शिव हैं या केशव हैं या परब्रह्म हैं? वैसे देखा जाए तो शिवमंत्र (पंचाक्षरी) का प्राण 'म' कार है क्योंकि 'नमःशिवाय' में

अगर 'म' कार को निकाला जाए तो 'न शिवाय' बचता है और अर्थ का अनर्थ हो जाता है। इसी प्रकार सप्ताक्षरी नारायणमन्त्र (नमो नारायणाय) में से 'रा' को निकाला जाए तो 'नमो नायनाय' बचता है जिससे उलटे अर्थ का बोध हो जाता है। पर संयोग की बात है कि इन दोनों मन्त्रों के आधारभूत अक्षरों (म. और रा) के संयोग से 'राम' शब्द की निष्पत्ति होती है। यही राम शब्द का परम रहस्य है जिसके ज्ञाताओं के चरणों पर त्यागराज नतमस्तक है।)

यहाँ पर एक बात ध्यान देने योग्य है कि त्यागराज ने जिस क्रम से राम शब्द के दोनों अक्षरों को यहाँ दिया है उससे उसका उल्टा रूप (म–रा) ही हमारे सामने आता है जिसके पुनश्चरण (बार-बार रटने) से अपने आप राम शब्द निष्पन्न हो जाता है। आदि कवि वाल्मीकि के बारे में यह वृत्तांत प्रसिद्ध है कि राम का उल्टा नाम जपते-जपते वे ब्रह्मभाव को प्राप्त कर गये थे—उल्टा नाम जपत जग जाना वाल्मीकि भे ब्रह्म समाना। हो सकता है, राम नाम की इसी अद्‌भुत महिमा की ओर त्यागराज ने इस गीत में संकेत किया हो।

इसके अलावा 'मा' अक्षर लक्ष्मी का वाचक है और 'रा' नारायण का प्राण है। इस प्रकार 'राम' शब्द लक्ष्मीनारायण का बोधक है और शिव-केशव के अभेद का सूचक भी। संत की सरल वाणी में मुखरित यह छोटा-सा वाक्य कई रमणीय अर्थों का प्रतिपादन करने वाला रसात्मक काव्य बन गया है। इतना तो स्पष्ट है कि त्यागराज का राम न विष्णु का अवतार है, न शिव का अंश है, न ब्रह्मा का द्योतक है। वास्तव में वह इन तीनों से परे और तीनों का सत्व सार लिए संतों के मानस में सदा बिराजमान साक्षात् परब्रह्म स्वरूप है।

राग 'अठाणा' में रचित अपने गीत में त्यागराज कहते हैं कि सृष्टि स्थिति और लय के अधिकारी ब्रह्म विष्णु और महेश्वर ने सोचा कि राम तो एक साधारण राजकुमार है। पर लोगों को उसकी महत्ता का गुणगान करते हुए देख कर उनके मन में यह जानने की इच्छा हुई कि आखिर उसमें क्या महत्ता है। तीनों ने मिल कर अपनी सारी महिमा तराजू के एक पलड़े में रखी और दूसरे पलड़े में राम की गुणवत्ता रखी और देखा कि राम का पलड़ा ही भारी हो रहा है। इस गीत में आलंकारिक ढंग से त्यागराज यह सिद्ध

करने का प्रयत्न कर रहे हैं कि राम के शील सौंदर्य और पराक्रम के सामने मूर्तित्रय का वैभव भी नगण्य है। वे तो अपने आराध्य राम को 'मेरु समान धीर' मानते हैं। भगवान के दस अवतारों में राम के अवतार को ही वे श्रेष्ठ मानते हैं, पर सबको एक ही परमात्मा के विभिन्न वेष मानते हैं। कहते हैं, 'पदि वेषमुल लो राम वेषमु बहु बागु' (दस वेषों में राम का वेष सबसे अच्छा है।) यही कारण है कि वे कभी-कभी राम का वर्णन करते हुए कृष्णलीला के प्रसंग को दृष्टांत के रूप में देते हैं। उदाहरण के लिए रामभक्ति की महिमा का प्रतिपादन करते हुए हनुमान का सागर पार करना और यशोदा का अपने पुत्र कन्हैया को ऊखल से बांधना—दो दृष्टांत देते हैं। यहां राम और कृष्ण में भक्त एक ही भगवान की अनेक रूपात्मकता देख रहे हैं। अन्यत्र वे स्वयं स्वीकार भी करते हैं कि राम के अलावा दूसरे देवताओं का चिंतन करते समय भी राम ही उनके ध्यान में आता है। उनका विचार है कि अन्यान्य देवता अगर आभूषण हैं तो राम उन सभी आभूषणों को आभूषित करने वाला मंगल सूत्र है।

त्यागराज की अपने आराध्य के प्रति यह निष्ठा और अनन्यता गोस्वामी तुलसीदास की भक्तिभावना का स्मरण कराती है जिनका एकमात्र भरोसा, बल, आस, विश्वास रघुनाथ के यश का स्वातिसलिल था। संत त्यागराज भी जिस प्रकार अपने आराध्य में एक बात, एक बाण और एक पत्नी के प्रति निष्ठा के दर्शन कर लेते हैं वैसे ही अपने आराध्य के प्रति भी वे एकनिष्ठ और अनन्य प्रेमभावना निभाते हैं।

त्यागराज के मन में राम के प्रति जो श्रद्धा या भक्ति है वह विवेक से परिपुष्ट है, केवल गतानुगति का अंधा अनुसरण मात्र नहीं है। वे अपने मन को स्पष्ट रूप से समझाते है—"तेलिसि राम चिंतन तो नाममु सेयवे ओ मनसा"। राम नाम का भेद समझ कर विवेकपूर्ण चिंतन के साथ आराधना करो। आगे वे और कहते हैं—मनको अपने अधीन बनाकर पल भर के लिए ही सही अंतरंग में तारक रूपी राम के वास्तविक तत्व की अवधारणा कर उनकी उपासना करो। राम नाम की सच्ची रमणीयता का बोध उसकी मननीयता में है। सच्चा मनन ही गहन गोचर मन्त्र को सुगम बना सकता है। इसके लिए अधिकारी निर्णय भी करते हुए कहते हैं कि जब तक राम के प्रति सच्चा प्रेम न हो तब तक उनके नाम में रुचि उत्पन्न नहीं हो सकती। जिसको राम नाम का स्वाद मिल गया, उसके सुख को मापा नहीं जा सकता।

इस अपरिमेय आनंद का अनुभव करने वालों में वे सबसे पहले भगवान शंकर को रखते हैं जो स्वर और राग की सुधा में नाम की मिश्री को मिला कर राम रसायन के आस्वादन में निरन्तर मग्न रहते हैं और अपनी अर्द्धांगी गौरी को भी उसकी अधिकारिणी बनाते हैं। यहाँ भी तुलसीदास की भांति त्यागराज भी शंकर को राम नाम के उपासकों में अग्रगण्य मानते हैं।

त्यागराज की रामभावना या भक्तिभावना जहाँ अनन्य और निश्चल है, वहाँ वह निश्छल और निर्मल भी है। उसमें आडम्बर, अस्वाभाविकता या अयथार्थता कहीं लेशमात्र भी नहीं मिलती। जहाँ वे एक ओर अपने मनको उपदेश देते हुए कहते हैं—

'भज रे भज मन परम भक्ति से रामचन्द्र का भजन करो मन !
चतुरानन शंकर को दुर्लभ रामभद्र का भजन करो मन !'
(भजन चेयवे मनसा-परम भक्तितो।
अज रुद्रादुलम् भूसुरादुलकरुदेन)

वहाँ दूसरी ओर आडम्बरपूर्ण भजन का खण्डन करते हुए स्पष्ट शब्दों में कहते हैं कि भजन तो वह नहीं कहलाता जहाँ अंतरंग में एक बात हो और बाहर से कोई दूसरी बात निकलती हो। एक और गीत में वे और भी स्पष्ट शब्दों में कहते हैं:-

'तनुवोकचो मनसोकचो दागिन वेषमोकचो निडि
अनुलनेचु वारिकि जयमगुने।'

(तन कहीं हो और मन कहीं हो और परपीडन नित्य का नियम हो तो उनको सफलता कैसे मिलेगी ?)

यहाँ पर कबीर की ये प्रसिद्ध पंक्तियां बरबस याद आती हैं—

'माला तो कर में फिरै जीभ फिरै मुख माँहि।
मनुवां तो दह दिसि फिरै, यह तो सुमिरन नाँहि।।

भावना के बिना शुष्क तीर्थयात्रा करने से भी कोई लाभ नहीं होता, इस आशय को स्पष्ट करते हुए त्यागराज कहते हैं—'कोटि नदुलु धनुष्कोटिलो नुंडग एटिकि तिरिगेद वे ओ मनसा' (जब करोड़ों नदियां धनुष्कोटि में पाई जा सकती हैं तो इधर उधर भटकने से क्या लाभ ?)

सांसारिक वैभव, शारीरिक बल और उच्च कुल में जन्म इन सबको निरर्थक और केवल रामभक्ति को सार्थक बताते हुए वे कहते हैं—शारीरिक बल और उच्चकुल से कोई लाभ नहीं है। केवल रामभक्ति से ही सभी मनोरथ सिद्ध हो सकते हैं। कौआ प्रतिदिन ठण्डे पानी में नहाता है, बगुला हमेशा ध्यान मग्न रहता है, बकरी सूखे पत्ते खा कर निरन्तर व्रत रखती है, सारी चिड़ियाँ आसमान में उड़ कर खेचरी विद्या का प्रदर्शन करती हैं। अनेक वन्य जीवी गुफाओं में रहते हैं और बन्दर हमेशा वन में रहते हैं। पर इनका जीवन भावनाहीन तपश्चर्या के कारण पावन तो नहीं माना जा सकता।'

सच्ची साधना के लिए मनको नियन्त्रित रखना परम आवश्यक है, यह त्यागराज का निश्चित मत है। वे कहते हैं—'मनसु स्वाधीनमैन वानिकि मरि मन्त्र तंत्रमु लेला ? तनुवु तानु कादनि येंचु वारिकि तपमु चेयवनेल ?" (अगर मन स्वाधीन है तो मंत्र तंत्र अनावश्यक हैं। जो अपने को अपने शरीर से अलग समझता है उसे किसी तपस्या की आवश्यकता नहीं है)। इसी आशय को प्रकारांतर से प्रकट करते हुए वे कहते हैं—'मनसु निल्प शक्तिलेक पोते मधुर घंट विरुल पूजेमि चेयुनु, धन दुर्मदुडै ता मुनिगिते कावेरि मंदाकिनि येडु ब्रोचुनु ?' (अगर मनको काबू में रखने में सफलता नहीं मिली तो मथुरा (मीनाक्षी) के मन्दिर में घंटी बजाने से क्या मिल सकता है। जब सारा मन मदमात्सर्य के कर्दम (कीचड में फंसा हुआ है तो कावेरी में शरीर को नहलाने से क्या लाभ है।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि त्यागराज की भक्ति-भावना ज्ञानहीन संकल्प मात्र नहीं है। सच्चे ज्ञान का संबल लेकर ही वे भक्ति पथ में आगे बढ़ना चाहते हैं। वे अपने आराध्य को 'गरुड गमन' कह कर संबोधित करते हुए राग गमन श्रम में ज्ञान का वर मांगते हैं और कहते हैं—हे गरुड-गामी राम ! मुझे सच्चा ज्ञान प्रदान करो। परमात्मा, जीवात्मा, ये चौदहों लोक, यहाँ के नर, किन्नर, किंपुरुष, मुनि, ऋषि सभी में एक ही परमतत्व को देखने का सही ज्ञान प्रदान करो।'

इस प्रकार त्यागराज की भक्तिभावना में विमल विवेक, सच्चा संकल्प और परिनिष्ठित आचरण तीनों का मंगलमय संगम दिखाई देता है। त्यागराज के आराध्य राम के जीवन में अनुपम सौंदर्य, आदर्श शील और अप्राकृत पराक्रम का अद्भुत समावेश है। इन तीनों को एक साथ चित्रित करते हुए त्यागराज

अपने एक गीत में धनुर्भंग के प्रसंग का एक सजीव चित्र प्रस्तुत करते हैं। मुनि की आँखों का इशारा पा कर जब राम ने शिवधनुष को तोड़ कर अपने लोकोत्तर पराक्रम का परिचय दिया था तब राजर्षि विश्वामित्र का मन आनन्द से फूला नहीं समाया था। त्यागराज कहते हैं कि उस आनन्दातिरेक में पता नहीं मुनि का मन किस ओर बह गया था। इतना बड़ा कार्य करने पर भी राम के मुख मण्डल पर थकावट का कोई आभास तक नहीं दिखाई पड़ा था। केवल उनके चेहरे पर घुंघराले बाल कुछ हिल गये थे तो उससे उनके सौंदर्य की शोभा ही बढ़ गयी थी। तीसरी बात यह है कि राम ने शिव-धनुष को तोड़ने का काम अपने आप या जानकी को पाने की लालसा से नहीं किया था, केवल मुनि की इच्छा पर उनका संकेत पाकर किया था। इसमें राम का अलौकिक शील व्यंजित होता है। इस प्रकार एक ही गीत में प्रस्तुत यह सुन्दर शब्द चित्र त्यागराज के आराध्य के शील, शक्ति और सौंदर्य तीनों की पराकाष्ठा को प्रदर्शित करता है। इसी प्रकार इस विभूतित्रयी का एकत्रित वर्णन एक और गीत में प्रस्तुत है—

"श्याम सुन्दरांग सकल शक्तिवि नीवेरा।
तामस रहित गुण सांद्र धरनुवेलयु रामचंद्र ॥"

(प्रभो ! तुम्हारा शरीर श्याम वर्णन का और देखने में अत्यन्त सुन्दर है और संसार की सारी शक्ति के तुम मूर्त रूप हो। ससार के सारे गुण तुम्हारे अन्दर पुंजीभूत हैं और उनमें तमोगुण का आभास तक नहीं है।)

राम के भिन्न-भिन्न गणों का अलग-अलग वर्णन भी त्यागराज के गीतों में यथेष्ट मात्रा में मिलता है। कहीं राम बाण के त्राण शौर्य का वर्णन है तो कहीं 'मधुर-मधुर रघुवर तेरी छवि' कह कर राम की नित्य रमणीय रूप-माधुरी का मनोहर वर्णन मिलता है। कहीं राम के मंदस्मित मुख मण्डल का मंजुल वर्णन है तो कहीं रणधीर राजकुमार रघुवीर का ओजस्वी चित्र प्रस्तुत है। पावन गुणराम और कल्याणराम रामभद्र को अपने जीवन का सर्वस्व बताते हुए राग स्वर स्वर हरप्रिया में त्यागराज कहते हैं—"तुम मेरे जीवन के आधार हो और आकार में सुन्दर हो, तुम मेरी तपस्या के फल हो और मेरे शरीर के बल हो, मेरे कुल के धन हो और मेरे सौभाग्य के आश्रय हो, मेरे मन की प्रसन्नता तुम ही हो और मेरे सुख के मूल स्रोत हो, मेरे भीतर की तृप्ति तुम ही हो और मुझे अच्छी लगने वाली मुग्ध मनोहर आकृति हो मेरे भाग्य और वैराग्य, जीवन और यौवन, आगमसार और जगदाधार तुम ही हो,

3

तुम ही मेरे देव हो, निर्विकल्प परब्रह्म हो और सर्वोन्नत मायातीत और आप्त जन हो जिसमें मेरी सारी आशाएं और आकांक्षाएँ सागर में रत्नों की भांति सुरक्षित हैं।"

इस प्रकार की संबुद्धियों में त्यागराज अपने आपको प्रभु के श्रीचरणों में अर्पित कर लेते हैं और कभी-कभी अपने को अपने आराध्य से अभिन्न समझ कर उसी परम सत्ता में एकाकार होने में ही परम श्रेय की प्राप्ति समझते हैं। ऐसी ही भावना से प्रेरित होकर वे कहते हैं—"इष्ट दैवमु नीवेरा, इलनु त्यागराजु वेरा" (तुम ही मेरे इष्ट देव हो, नहीं, तुम स्वयं त्यागराज हो)। लेकिन इस आत्मसमर्पण की अवस्था तक पहुँचने में भक्त को कई सोपानों को पार करना पड़ता है, भव सागर की कई भाव-वीचिकाओं के साथ उठ गिर कर और फिर उठ कर किसी तरह वह अन्त में तट पर पहुँच जाता है। कभी वे अपने कुकर्मों से व्याकुल होकर कहते हैं, "राम कितने भी उदार क्यों न हो, मेरी रक्षा वे कैसे कर पाएँगे क्योंकि सारा जीवन मैंने व्यर्थ गंवा दिया है और मेरी कहानी कर्णकठोर बन गयी है।" तो कभी वे निश्चित होकर कहते हैं कि सारे संसार का सूत्रधार बन कर जगन्नाटक रचने वाला राम जब हमारे साथ है तो हमें चिंता किस बात की ?" कभी-कभी प्रभु के वात्सल्य पर शंका प्रकट करते हुए कहते हैं, "किस मूर्ख ने तुम को प्रणतार्तिहर (आश्रित वत्सल) कहा है क्योंकि इसकी पुष्टि करने वाला कोई प्रमाण नहीं मिलता" तो कभी अपने को ही दोषी समझ कर कहते हैं—"इसमें तुम्हारा कोई दोष नहीं है। दोष सारा मेरा है। जब मेरा सोना ही खोटा है तो बिचारा सुनार बढ़िया गहना कैसे बना देगा ?" इस प्रकार कई शब्दों में, कई शैलियों में और कई भाव लहरियों में वे प्रभु से बिनती कर अन्त में कहते हैं, "हे राघव ! मैं और कब तक बिनती करता रहूँ ! मेरी चिंता दूर करने के लिए तुम इतने हठी क्यों बने हो।" इस पर भी जब राम के मुँह से सांत्वना या समाधान का कोई शब्द नही निकलता है तो भक्त कहता है, "तुम जवाब क्यों नहीं देते ? क्या बात करने से तुम्हारा कुछ बिगड़ जाता है ? क्या सामने दिखाई पड़ने मात्र से मैं तुमसे अनुचित वर माँग कर तुम को परेशान करूंगा ? नहीं, नहीं, मैं ऐसा दुराकांक्षी नहीं हूँ। मैं जानता हूँ, मेरे भाग्य में जो लिखा है, सो मिलेगा। पर तुम से मैं केवल दर्शन का सुख चाहता हूँ। तुम्हारे दर्शन से मेरी सारी पीडा का परिहार हो जाएगा। मुझे और कुछ नहीं चाहिए।" बड़ी दीन मुखमुद्रा में करुणासागर राम से भक्त त्यागराज बिनती के स्वर में

कहते हैं—"कंट चूडुमी ओकपरि कीगंट चूडुमी ।" (एक बार मेरी ओर देखो, केवल एक बार तिरछी नज़र से ही सही मेरी ओर देखो)। यहाँ पर "बारक कहिए कृपालु तुलसीदास मेरो" वाली प्रसिद्ध पंक्ति याद आती है। त्यागराज कभी-कभी इतने हठी बन जाते हैं कि प्रभु से साफ-साफ बताते हैं कि जब तक तुम मेरा काम ठीक-ठीक नहीं करते हो तब तक मैं तुम को छोड़ने वाला नहीं हूँ। उनका काम कोई ऐसा दुष्कर नहीं है कि उसे कराने में राम को कोई परेशानी हो। वह बहुत साधारण और सीधा सादा है। वे केवल इतना ही चाहते हैं कि जब सोने की शय्या पर माँ जानकी के पास वे आराम से बैठे हों और जानकी मल्लिका के फूलों से अपने प्रभु का अर्चन कर रही हो उस समय उनको एक अच्छा गीत गाने को कहा जाए। बस, वह और कुछ नहीं चाहते। कामना कितनी सरल और कितनी चतुर है। सच्चे कलाकार को कला के अधिकारी के सामने अपनी कला के प्रदर्शन से बढ़ कर और क्या चाहिए।

त्यागराज की भक्ति भावना और संगीत साधना, उन्हीं के शब्दों में, 'भव-रस-युत' है। कभी वे अपने प्रभु को माता समझ कर उनसे पूछते हैं—"ज़रा यह तो बताओ माँ कि पुत्र की पुकार सुन कर माँ उसके पास दौड़ कर आती है या पुत्र माँ के पास चला जाता है? बछड़े के पास गाय आती है या गाय के पास बछड़ा चला जाता है?" कभी वह श्रृंगार नायिका की भाँति मधुर भावना में अपने प्रभु से पूछते हैं, "मैं आपसे कहाँ गले से मिलूँ?" कभी वे अपने प्रियतम के अंगांग को चुने हुए आभूषणों से सजा-सजा कर उसका लोकोत्तर सौंदर्य देखना चाहते हैं और कभी वे अपने प्रियतम को प्यार से अपने घर बुलाते हुए कहते हैं 'रारा मा यिंटि दाक' (ज़रा हमारे घर तक आने का कष्ट करो।) वात्सल्य और श्रृंगार के अतिरिक्त त्यागराज में दास्य भावना अधिक दिखाई देती है। वे राम के राज दरबार में भट या सिपाही के पद पर काम करने में गौरव समझते हैं। राम नाम से अंकित पट्टी बाँध कर रोमांच रूपी कंचुक धारण कर राम नाम का खड्ग हाथ में लिये वे हमेशा राजा राम की सेवा में प्रस्तुत रहना चाहते हैं और चाहते हैं कि राम कहीं उनको छोड़ कर चले न जाएँ। इसी व्यग्रता को प्रकट करते हुए त्यागराज कहते हैं—

"नी चित्तमु निश्चलमु निर्मलमनि निन्ने नम्मिनानु।
ना चित्तमु वंचन चंचलमनि ननु विडनाडकुमि श्रीराम॥"

(हे राम ! तुम्हारा मन बहुत ही निश्चल और निर्मल है। पर मेरे मन में छल कपट और चंचलता को देख कर मुझे छोड़ कर कहीं नहीं जाना।)

आगे वे और कहते हैं कि मुझे हमेशा अपने पास ही रख लो। मैं तुम्हारे किसी न किसी काम जरूर आऊँगा। जैसे हनुमान और भरत प्रभु का इशारा पा कर सारा काम कर लेते हैं उसी प्रकार त्यागराज अपने प्रभु को आश्वासन देते हुए कहते हैं, "मैं भी उन्हीं की भांति आपका संकेत मात्र से आपकी आज्ञा का पालन करूँगा। मुझे बार-बार कहने की आवश्यकता नहीं होगी :" यहाँ पर स्मरणीय है कि भक्त मीरा ने भी इसी प्रकार 'चाकर राखो जी' कह कर प्रभु की परिचारिका बनने की इच्छा प्रकट की। भक्तों की भाव-भूमिका देश-काल से निरपेक्ष हो कर सर्वत्र समांतर चलता है सनातन तत्वों का प्रतिपादन करती है।

त्यागराज की भक्तिभावना उनकी 'नव रस युत' कृतियों से युक्त और भागवतकार की 'नवधा' भक्ति से अनुप्राणित है। श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पाद सेवन अर्चन, वंदन, दास्य, सख्य और आत्म निवेदन को व्यंजित करने वाले गीत त्यागराज के अनेकों मिलते हैं। कभी वे प्रभु की पुण्य कथा के श्रवण के लिए लालायित हो कर कहते हैं कि रामकथामृत के आस्वादन से उनकी जन्मजन्मांतर की भूख हमेशा के लिए मिट गयी है। उनकी निश्चित धारणा है कि रामकथा की सुधा के पान से मिलने वाला सुख किसी राज्य के पालन से मिलने वाले सुख से कहीं बढ़ कर है क्योंकि सीता, राम लक्ष्मण भरत की कहानी धर्म आदि चारों फल प्रदान करने वाली है, धीरज, आनंद और सुख-सन्तोष की मंजूषा है, कर्म बंधन के सागर को पार कराने वाली नौका है और कलिमल को दूर करने वाला दिव्य रसायन है। रामभक्ति के साम्राज्य को अनिर्वचनीय आनंद प्रदान करने वाला बताते हुए त्यागराज कहते हैं—

रामभक्ति साम्राज्य मे मानवुल कब्बेने मनसा !
आ मानवुल संदर्शनमत्यंत ब्रह्मानंद मे।
ईलागनि विवरिंप लेनु-चाला स्वानुभव वेद्यमे।
लीलासृष्ट जगत्रयमने कोलाहल त्यागराजनुतुडगु ॥

(राम भक्ति अपने में एक साम्राज्य के समान है। जो इस साम्राज्य के अधिकारी होते हैं, उनके दर्शन मात्र से ब्रह्मानंद की प्राप्ति हो जाती है।

जब परोक्ष रूप से प्राप्त आनंद ही इतना लोकोत्तर है, तो फिर उसकी प्रत्यक्ष अनुभूति कैसी होती है, इसका वर्णन करना मेरे लिए सम्भव नहीं है। उसे केवल अनुभव से जाना जा सकता। कोलाहल से भरा हुआ यह सारा संसार, ये तीनों लोक, ईश्वर की लीला के परिणाम मात्र हैं। इस मायामय संसार का सनातन सत्य केवल रामभक्ति में पाया जा सकता है।)

राम कथा का श्रवण जितना महत्वपूर्ण है, रामनाम का स्मरण उससे भी अधिक प्रभावशाली बताया गया है। 'स्मरण ही सुख है' (स्मरणे सुखमु) यह त्यागराज का दृढ़ विश्वास है। राम नाम ही श्रेय है और राम भाव ही प्रेय है, यह भी त्यागराज की सूक्तियों में से स्मरणीय हैं। इस प्रकार सूत्रशैली में त्यागराज ने कई सूक्तियों को स्वरबद्ध किया है जिनका स्मरण मात्र मानव मनको पावन बना देता है। राम एव दैवतम्', शांति बिना सुख नहीं कहीं भी, भक्ति बिना संगीत वृथा है' आदि इसी प्रकार की सूक्तियां हैं।

श्रीराम के पाद सेवन को भी त्यागराज विशेष पावन बताते हुए कहते हैं कि जिन चरणों ने शिला के रूप में पड़ी हुई और श्रीराम को देखते ही रो पड़ी अहल्या को पुनर्जीवन प्रदान किया था, उनकी कृपा, त्यागराज कहते हैं, मन को पावन बनाने में सुलभ है। राग अमृतवाहिनी में निबद्ध उनका गीत 'श्रीराम पादमा नीकृप जालुने' इसी भाव को प्रकट करता है। इस गीत मे प्रयुक्त राग का भी अपना महत्व है।

राम को केवल अलौकिक आनंद प्रदान करने वाले आदर्श पुरुष के रूप में ही त्यागराज ने आराधा हो, ऐसी बात नहीं है। संत त्यागराज की दृष्टि समन्वयात्मक है। उसके अलौकिक आलोक में लोक संग्रह की भावना भी यथेष्ट मात्रा में पाई जाती है। राम राज्य का सुन्दर चित्र प्रस्तुत करते हुए वे लिखते हैं—

'कारु बारु सेयुवारु कलरे नीवले साके नगरिनि।
ऊरिवारु देश जनुलु वरमुनुलुप्पोंगुचु भावुकुलय्ये।
नेलकु मूड़ वानलखिल विद्यल नेर्पु गलिग दीर्घायिलु गलिग
चलमु गर्व रहितलु गालेद साधु त्यागराज विनुत राम।।"

(साकेत के स्वामी राम ! जैसे आपने साकेत का शासन किया है, वैसा सुन्दर प्रशासन और कहाँ देखने को मिलेगा ? ग्रामीण, नागरिक और

सारे देशवासी भाव के धनी हो कर काननवासी मुनियों को आनद प्रदान किया करते थे। प्रतिमास तीन बार यथेष्ट वर्षा हुआ करती थी। लोग सभी विद्याओं में पारंगत हुआ करते थे। सभी लोग दीर्घायु हो कर निराडंबर और निर्मल जीवन व्यतीत किया करते थे। ऐसा साधुवाद प्राप्त करने वाला राज्य और कहाँ पाया जाएगा ?)

संत त्यागराज की स्वच्छंद और सात्विक भक्तिभावना को किसी दार्शनिक सम्प्रदाय या परंपरा तक सीमित रखना सम्भव नहीं है। वे स्वयं निश्चित नहीं कर पाते हैं कि वे किस पथ का अनुसरण करें। यदि वे अपने आपको विश्वात्मा का अभिन्न अंग मानते हैं तो परमात्मा उनको अपना समझ कर उनका भार वहन करने के दायित्व से छुटकारा पा सकता है। इसके विपरीत वह अपने प्रभु का दास बन कर रहना चाहता है तो उसे द्वैती कह कर टाला भी जा सकता है। इसीलिए वे निश्चित रूप से जानना चाहते हैं कि द्वैत भावना में श्रेय है या अद्वैत में। प्रभु से ही अपनी शंका का समाधान पाने की इच्छा से वे पूछते हैं—

"द्वैतमु सुखमा ? अद्वैतमु सुखमा ?
चैतन्यमा ! विढु सर्वसाक्षि विस्तारमुगनु देलुपुमु नातो।
गगन पवन तपन भुवनादयवनिलो
नग धराज शिवेन्द्रादि सुरुल लो
भगवद्भक्त वराग्रेसरुल लो
बाग रमिचे त्यागराजार्चित।"

"मेरे सर्वसाक्षी चैतन्य ! मुझे विस्तार से समझा दो कि द्वैतभावना हितकर या अद्वैत। धरती, जल, प्रकाश, वायु और आकाश में तुम सर्वत्र छाए हुए हो और ब्रह्मा, विष्णु और शंकर के अलावा प्रमुख भक्तों के मानस मन्दिर में सदा विराजमान तुम्हारा सच्चा रूप मैं कैसे पाऊं ?"

इसी प्रकार की विचिकित्सा गोस्वामी तुलसीदास के मानस में भी मंथन पैदा कर गयी थी और उन्होंने इसका समाधान भी पा लिया था। उनका निष्कर्ष यह था—

"कोउ कह सत्य झूठ कह कोउ जुगल प्रबल कोउ माने।
तुलसीदास परिहरै तीन भ्रम सो आपन पहिचानै॥

जब भक्त सारे वाग्जाल को भ्रांति समझ कर परमात्मा के आश्रय में परम शांति का अनुभव करता है, तभी वह अपने को पहचान पाता है। हनुमान सुग्रीव, विभीषण आदि के सम्मुख भगवान रामचन्द्र के दिये हुए अभय दान से इसी आशय की पुष्टि होती है।

"सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते।
अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं मम।।"

प्रभु के इन्हीं वचनों को त्यागराज ने सिद्धान्त के रूप में ग्रहण कर लिया है और इन्हीं को दुहराते हुए वे कहते हैं—

"सीतापती ! ना मनसुन सिद्धांतमनि युन्नानु रा
वातात्मजुल चेंतने वर्णिंचिन नी पलुकुलेल्ल
प्रेमजूचि ना पै पेद्दा मनसु चेसि
नीमहिम लेल्ल निज्ञार जूपि
ईमहिनि भय मेरिकन्न माट
रामचन्द्र ! त्यागराजनुत।।'

(हे सीतापति राम ! हनुमान आदि के सामने आपने जो बातें कही थीं, उनको मैंने सिद्धान्त के रूप में ग्रहण कर लिया है और मैं बिलकुल आश्वस्त हूं। आपने मुझे प्यार से देखा और हृदय से स्वीकारा और सारे संसार में फैली हुई अपनी महिमा का प्रमाण भी दिया तो मुझ भय किस बात का है ?)

प्रभु के इस अभयदान से आश्वस्त हो कर भक्त त्यागराज कहते हैं—

"तव दासोऽह तव दासोऽहं दासोऽहं तव दाशरथे।।"

आत्म समर्पण की भावना में ही त्यागराज सबसे अधिक श्रेय और सबसे उत्तम प्रेय का सामरस्य देखते हैं। वास्तव में त्यागराज के लिए राम से बढ़ कर प्रेम का आलंबन और कहीं नहीं हैं। वही उनके पिता, वही उनके गुरु. वही उनके स्वामी, वही उनके प्रियतम और वह उनके जीवन हैं। जीवन-दाता धाता, पालन कर्ता विष्णु, हर्ता-धर्ता शंकर और इन तीनों से परे सबका शासन करने वाला नियन्ता परब्रह्म भी वही है।

रमते योगिनो नते सत्यानन्दे चिदात्मनि।
इति राम पदेनासो परंब्रह्माभिधीयते।।

—

प्रणव नाद : राग

"नाद सुधा रस राम है, राग राम कोदण्ड"

पंचनद के नादयोगी त्यागराज की नाद साधना को उनकी भक्ति भावना से पृथक् नहीं माना जा सकता क्योंकि दोनों उनके व्यक्तित्व के दो अभिन्न अंग हैं। वे अपने भक्ति-भावना के माध्यम से अपने हृदयाकाश या अन्तरंग में प्रतिष्ठित राम को प्रत्यक्ष कर लेते हैं तो वे अपनी नाद साधना के माध्यम से अनन्त आकाश में व्याप्त नादब्रह्म को नर-पुंगव के रूप में साकार बना लेते हैं। रघुवर की छवि उनके लिए जितनी मधुर लगती है, उतना ही नयनमनोहर वे अपने नाद सौन्दर्य को भी पाते हैं। उनके लिए नाद केवल सुन कर पुलकित होने की वस्तु नहीं है, बल्कि प्रत्यक्ष देख कर आनन्दित होने की सौन्दर्य राशि है। परम तत्व के द्रष्टा जिस प्रकार एक ही परमात्मा को अनेक रूपों में देखते हैं, उसी प्रकार नादयोगी त्यागराज अपने उपास्य नाद को कभी राम के रूप में देखते हैं तो कभी शंकर के रूप में और कभी वेणुनाद विशारद कृष्ण के रूप में। कोदण्ड धारी राम को नाद के मूर्त रूप में प्रस्तुत करते हुए वे कहते हैं—

"नादसुधा रसंबिलनु नराकृति आये मनसा।
वेद पुराणागम शास्त्रादुलकाधारमौ॥
स्वरमुलारुन्नोकटि घंटलु, वर रागमु कोदण्डमु।
दुर नय देश्यमु त्रिगुणमु, निरत गति शरमु रा॥
सरस संगति संदर्भमुगल गिरमुलु रा।
धर भजन भाग्यमु रा त्यागराजु सेविंचु॥"

(त्यागराज नादसुधा के जिस रस का सेवन करता है, वही नराकार धारण कर राम के रूप में अवतरित हुआ है। यही नाद-सुधा वेद, पुराण, आगम और शास्त्रों का आधार है। नाद का व्यक्त रूप 'राग' ही राम का कोदण्ड है। सातों स्वर (षड्ज और उससे निकले छह स्वरों को मिला कर)

उस धनुष में लगी छह घंटियाँ हैं। दुर, नय और देश्य नाम की तीनों शैल्नियाँ उसकी तीन डोरियाँ (गुण) हैं। उसकी गतिशीलता ही तीर है। स्वर के संचार में प्रकट उतार चढ़ाव और संगतियाँ ही राम की रमणीय सुक्तियाँ हैं। राम का भजन ही जीवन में सच्चा भाग्य है।)

त्यागराज के शब्दों में सुधामधुर भाषी राम को आदि कवि वाल्मीकि ने भी 'गांधर्वे च भुवि श्रेष्ठ' कह कर उच्चकोटि का संगीतज्ञ माना है। इस प्रसंग में वाग्वेदी वाल्मीकि ने राम के लिए 'भरताग्रज' शब्द का प्रयोग किया था जिससे यह संकेत मिलता है कि भरत भी संगीत-शास्त्र से भली-भांति परिचित था। नन्दिग्राम में जब भरत चौदह वर्ष तक तापस जीवन व्यतीत कर अपने भाई के अयोध्या लौट आने की कोई आशा न पा कर प्रायोपवेश के लिए प्रस्तुत हो जाता है तब राम के आगमन का शुभ सन्देश ले कर पवन तनय हनुमान भरत के पास आ कर उनके मन को प्रसन्न बनाने वाली वार्ता सुस्वर में सुनाते हैं। इस प्रकार राम, भरत और हनुमान तीनों को नाद सौन्दर्य के आराधक सिद्ध किया गया है। राम कथा को राग सुधा के माध्यम से प्रस्तुत करने में प्रवीण त्यागराज भी इस भूमिका से परिचित थे। तभी तो वे कहते हैं—

"सीतापति चरणाब्जमु निडुकोन्न
वातात्मजनिकि बाग देलुसु रा।"

(वायु नन्दन हनुमान को, जिन्होंने राम के चरण कमलों को अपने हृदय में बसा लिया है, इस बात का खूब पता है कि गीता का सन्देश और संगीत का आनन्द दोनों का निधान राम या आत्माराम है।)

हनुमान की नादोपसना का रहस्य बताते हुए त्यागराज आगे कहते हैं कि भगवन विष्णु, शंकर, सूर्य, काल, कर्म आदि तत्वों के विचक्षण ज्ञाता हैं। पवन के पुत्र और सुग्रीव के सचिव हनुमान को गायक और गान कला के मर्मज्ञ के रूप में प्रस्तुत करने में पंचनद के नादयोगी की सूक्ष्म-निरीक्षण पटुता का परिचय मिलता है। नाद की उपासना के सम्बन्ध में उनके विचार इतने व्यापक हैं कि वे ब्रह्मा, विष्णु और शंकर को नाद की महिमा से ही प्रकट बताते हैं। उनकी निश्चित धारणा है कि वेद के प्रवक्ता वेद से परे हो कर विश्व भर में व्याप्त दिव्यात्मा, मन्त्र-तन्त्र और मन्त्र के मर्मज्ञ महामहिम

तपस्वी और तन्त्री के स्वर, लय और राग में तल्लीन महागायक—सबके सब नाद की उपासना के बल पर ही स्वतंत्रचेता बन कर जीवन्मुक्त हो चुके हैं और हो रहे हैं।

नाद रूपी शरीर धारण कर वेदसार का प्रसार करने वाले शंकर की रूप कल्पना त्यागराज के शब्दों में लोकोत्तर मनोहारिता का मधुर स्वाद प्रदान करती है :

नाद तनुमनिशं शंकरम्
नमामि, मे मनसा शिरसा ।।
मोदकर निगमोत्तम साम वेद सारं वारं वारम् ।।
सद्योजातादि पंच वक्त्रज सरिगम पधनी वर सप्तस्वर
विद्यालोलं विदलित कालम् विमल हृदय त्यागराज परिपालम् ।।

शिवजी के पाँच मुखों से निकले सात स्वरों की विद्या में निरन्तर विलीन कालातीत शंकर ने त्यागराज के विमल हृदय को निश्चय ही परिपालित ही नहीं, पद लालित भी बना दिया है। जो नाद सौंदर्य त्यागराज को शंकर के शरीर में दिखाई देता है, उसी को वे चारों वेदों को अनुप्राणित करने वाले प्रणव से उत्पन्न सात स्वरों के नादाचल (नाद रूपी पर्वत) पर सदा प्रदोप्त होने वाले मुरलीधर कृष्ण के रूप में देखते हैं। उनके मनमोहन रूप की वंदना करते हुए त्यागराज कहते हैं—

"वेद शिरोमातृज सप्तस्वर—
नादाचल दीप स्वीकृत
यादवकुल मुरलीवादन
विनोद ! मोहनकर ! त्यागराज वंदनीय ।।"

राम, कृष्ण और शंकर—तीनों में नाद ब्रह्म का ही रूप देखने वाले स्वर द्रष्टा त्यागराज को सातों स्वर सुन्दर रमणियों की तरह दिखाई देते हैं जो नाभि, हृदय, कंठ, रसना और नासिका में विराजमान होती हैं, चारों वेदों को शोभा प्रदान करती हैं, मंत्रराज गायत्री के हृदय को अलंकृत करती हैं और त्यागराज जैसे चिंतकों के अंतरतम में निवास करती हैं।

राम की रूप कल्पना की भाँति राम-कृपा की परिभाषा भी त्यागराज बड़े अनोखे ढंग से देते हैं। उनके अनुसार नादब्रह्म की भावना से उत्पन्न होने

वाले आनन्द का रस ही राम की कृपा है जो नाद के उपासक को निरन्तर आनन्द प्रदान करने वाली होती है। त्यागराज का मृदुभाषी राम उनकी स्वरलहरी से आभूषित और उनके कृति-वसनों से आवेष्टित है।

प्रकृत्या नम्र और गंभीर होते हुए भी संगीत के सधे हुए साधक के रूप में त्यागराज अपनी साधना की गरिमा और गायन की महिमा से भली-भांति परिचित थे। वे जानते थे कि जो लोग शिवात्मक नाद को प्रणव के रूप में सातों स्वरों में देख पाते हैं जीवन्मुक्त बन जाते हैं। वे अपने मन को निरन्तर यही उपदेश देते हैं कि याग, योग, त्याग और भोग चारों फल प्रदान करने वाली राग-सुधा का रसास्वादन अमर बनने का सुकट साधन है। उनकी निश्चित धारणा है कि ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर को भी महिमा प्रदान करने वाले नाद-ब्रह्म के आनन्द-सागर में निमग्न होकर जो अपने को कृत-कृत्य नहीं कर पाते, उनका जीना धरती के लिए भार-मात्र है। नाद-सौंदर्य में लीन होने से ही ब्रह्मानन्द की प्राप्ति संभव है यह बात वे अपने गीतों में बार-बार दुहराते हैं।

त्यागराज पहले भक्त और बाद में संगीतज्ञ थे क्योंकि उनका निश्चित मत था कि केवल संगीत के शुष्क ज्ञान से कोई लाभ नहीं है। वे चाहते थे कि वह भक्ति से भी युक्त हो। इस बात को साफ-साफ समझाते हुए वे कहते हैं कि भक्ति के बिना संगीत का ज्ञान सही दिशा प्रदान नहीं कर सकता। भृंगी, नटराज, हनुमान, अगस्त्य, मतंग और नारद जैसे महात्माओं के द्वारा जिस नाद की उपासना की गई है, उसको साधारण मनोरंजन के साधन के रूप में अपनाना उनका अभीष्ट नहीं था। उन्होंने गान कला को जीवन्मुक्त बनने के साधन के रूप में स्वीकार किया था। वे अपने आपसे पूछते हैं :

"मोक्षमु गलदा ? भुविलो जीवन्मुक्तुलु गानिवारलकु
साक्षात्कार नी सद्भक्ति संगीत ज्ञान विहीनुलकु ?"

(जो लोग भक्तिभावना से प्रेरित हो कर संगीत की साधना नहीं करते और नादब्रह्म के साक्षात्कार से जीवन्मुक्त नहीं होते, उनको क्या कभी मुक्ति मिलेगी ?)

यहाँ पर विचारणीय है कि संगीत जीवन्मुक्ति का साधन कैसे माना गया है। काव्य के प्रयोजनों में "सद्यः पर निवृत्ति" को भी एक प्रयोजन माना

गया है। भाव योगी भावना-शक्ति के बल पर कुछ क्षणों के लिए अपने को बाह्य संसार से एकदम अलग कर लेते हैं। इसी को आचार्य मम्मट ने "सद्यः पर निवृत्ति" कहा है। यही जीव की मुक्तावस्था है जब जीवात्मा अपने को परमात्मा के निकट से निकट पाता है। जिस प्रकार रस सिद्ध कवि आत्मा की इस मुक्तावस्था को प्राप्त कर चुके, उसी प्रकार त्यागराज जैसे पहुँचे हुए स्वर सिद्ध गायक अपनी नाद साधना के बल पर जीवन्मुक्त बन गये। लेकिन यह तभी संभव है जब गायक अपने उपास्य नाद को जाने-पहिचाने, देखे-परखे और बाहर भीतर सर्वत्र फैली हुई उसकी विराट् सत्ता का साक्षात्कार करे। इसी अधिकार का स्वरूप सूत्र रूप में निरूपित करते हुए त्यागराज "सद्भक्ति-संगीतज्ञता" को जीवन्मुक्ति का आवश्यक उपादान बताते हैं। इसी बात को विस्तार से समझाते हुए और नारद की उत्पत्ति और व्याप्ति का वर्णन करते हुए वे कहते हैं—

"प्राणानल संयोगमु वल्ल
प्रणव नादमु सप्त स्वरमुलै बरग
वीणा-वादन लोलुडो शिव मनो विधमेरुगरु"

(प्राण और अनल के सयोग से उत्पन्न प्रणव नाद ही सात स्वरों के रूप में फैला हुआ है। इस रहस्य के ज्ञाता शंकर निरंतर वीणा-वादन में व्याप्त रहते हैं। लेकिन जो इस बात को नहीं जानते हैं वे न तो सद्भक्ति और संगीत के ज्ञाता हो सकते हैं और जीवन्मुक्त बन सकते हैं।)

इस गीत में प्रणव को प्राण और अनल (वायु और अग्नि) के संयोग से उत्पन्न बताया गया है। यह बात गहन अध्ययन और मनन का विषय है। वायु और अग्नि पाँच भूतों में दूसरे और तीसरे हैं जबकि आकाश सबसे पहला है। आकाश से वायु और वायु से अग्नि की व्युत्पत्ति बताई जाती है। आकाश का लक्षण शब्द है, वायु का स्पर्श और अग्नि का रूप। शब्द का वहन करने वाला आकाश ब्रह्म का शरीर माना गया है। आकाश रूपी शरीर धारण करने वाला ब्रह्म शब्द पराधीन है। अखिल जगत् में अबाध गति से संचरण करने वाला यही शब्द प्राणों के स्पर्श से अर्थात् पार्थिव शरीर के संसर्ग से नाद बन जाता है और अनल के आघात से प्रणव बन जाता है। यही प्रणव मिट्टी और पानी के पुतले—मानव—की साधना के बल पर सात स्वरों में मुखरित होता है। नाद साधना के सम्बन्ध में त्यागराज का यह सिद्धान्त निम्नलिखित चार पंक्तियों में बड़ी सरल और सहज शैली में व्यक्त किया गया है।

"आकाश शरीरमु ब्रह्ममने
आत्मा रामुनि ता सरिजूचु
लोकादुलु चिन्मयमनु सुस्वर
लोलुडौ त्यागराज सन्नुत ।।"

(आकाश रूपी शरीर धारण करने वाले ब्रह्म को आत्माराम के रूप में अपने अन्दर समाहित देख कर उसी के चिन्मय व्यक्तित्व में समस्त संसार को प्रतिबिंबित पाने की क्षमता प्रदान करने वाला संगीतज्ञान सबके लिए सुलभ नहीं है। ब्रह्मा ने जिनके भाग्य में यह लिखा है, वही लोग जान सकते हैं।)

आगे चल कर नाद-साधना की गरिमा का वर्णन करते हुए नादयोगी त्यागराज कहते हैं—

"कद्दनुवारिकि कद्दु कहुनि मोरलनिडु
पेद्दल माटलु नेडबद्धमौने ?"

(तत्व वेत्ता गुरुजन कहते हैं कि जो लोग उसके अस्तित्व को मानते हैं, उनके लिए उसका अस्तित्व निर्विवाद है। इस तथ्य का आज प्रतिषेध नहीं हो सकता।)

त्यागराज का नाद ब्रह्म निराकार नहीं है। उसकी नयनमनोहर छवि का वर्णन करते हुए वे कहते हैं कि उनके कपोल दर्पण की भांति स्वच्छ और पारदर्शी हैं। जिस निष्ठा और दीक्षा के साथ त्यागराज उनकी निरंतर आराधना करते हैं उसका वर्णन उन्हीं के शब्दों में सुनने योग्य है :

"निद्दुर निराकरिंचि मुद्दुग तंबूर पट्टि
शुद्धमैन मनसु चे सुस्वरमुतो
पद्दु तप्पक भजियिंचुभक्तपालनमु सेयु
तद्दुयशालिवि नीव ।"

(जो लोग निद्रा का सुख छोड़ कर प्यार से हाथ में तानपूरा लिए प्रसन्न मन और सुमधुर स्वर में परम्परागत विधि से आपका भजन करते हैं, उन भक्तों पर आपकी अपार कृपा होती है।)

इस प्रकार की स्वर साधना से युक्त भक्ति-भावना को स्वर्ग और अपवर्ग (मुक्ति) का साधन बताते हुए नादकमल पर भ्रमर को तरह मंडराने वाले रसज्ञ त्यागराज कहते हैं—"परमानन्द के परिमल को बगुला और मेंढक क्या पहचानते हैं ? मूलाधार से निकलने वाले भाव को पहचानना ही सच्ची मुक्ति है। जहाँ से सातों स्वर मुखरित होते हैं उस मूल स्रोत की जानकारी ही मोक्ष है। जन्म जन्मांतर की निरन्तर साधना से हो इस प्रकार का सच्चा ज्ञान मिल सकता है। सहज भक्ति से युक्त संगीत का ज्ञान ही मुक्ति का एकमात्र साधन है। मृदंग की ध्वनि तरंगों का अन्तरंग पहचाने बिना ढोल पीटने से कोई लाभ नहीं है। विशुद्ध मन से जो पूजा की जाती है, वही सार्थक है। रजत पर्वत के स्वामी शंकर ने अपनी अन्तरंगिणी गिरिजा को स्वरार्णव की जो रहस्यमयी बातें बतलाई हैं, वे सब प्रभु की कृपा से त्यागराज को ज्ञात हैं।"

इतनी गहरी स्वर साधना के सम्राट् त्यागराज में आत्मप्रत्यय की भावना भी यथेष्ट मात्रा में है, तो कोई आश्चर्य नहीं। वे नहीं चाहते कि उनकी नादसाधना को साधारण भजन परायण भक्तों की शुष्क पंडितम्मन्यता के समकक्ष समझा जाए। जो लोग राग और ताल, रक्ति और भक्ति तथा ज्ञान और प्रेम को ठीक-ठीक पहिचाने बिना तालियाँ बजाते रहते हैं और उसी को स्वर-साधना समझते हैं उन पर त्यागराज को दया आती है। ऐसे असंस्कृत गायकों की भर्त्सना करते हुए वे कहते हैं :

"वर राग लयज्ञुलु ताममुचु वदरेरया।
स्वर जाति मूर्च्छन भेदमुल्
स्वांतमंदु तेलियक युडि ॥
देहोद्भवबगु नादमुल्
दिव्यमौ प्रणवाकारमने
दाहम्बेरुगनि मानवुल्
त्यागराज नुत येचेरु राम।"

(कुछ लोग अपने को राग और लय के मर्मज्ञ मान कर अकड़ कर चलते रहते हैं। पर वे सचमुच जानते नहीं कि स्वर क्या है और मूर्च्छना की बारीकियाँ क्या हैं। उनको क्या पता कि शरीर से उत्पन्न नाद प्रणव नाद का ही रूपांतर है।)

जहाँ त्यागराज ने अनधिकारी गायकों की निंदा की है, वहाँ उन्होंने संगीत शास्त्र के मर्मज्ञ कोविदों की वंदना भी की है। उनकी दृष्टि में संगीत सामवेद का अंग है जिसके प्रवर्तक साक्षात् शंकर हैं। इस प्रशस्त विद्या के उद्गाताओं में वे कई देवी देवताओं और प्रतिष्ठित आचार्यों की एक लम्बी सूची प्रस्तुत करते हुए कहते हैं :—

"कमला-गौरी-वागीश्वरी-विधि-गरुडध्वज-शिव-नारदुलु
अमरेश-भरत-काश्यप-चंडीशांजनेय-गुह-गजमुखुलु
मुमुकडुज-कुंभज-तुम्बुरु-वर सोमेश्वर-शार्ङ्ग-देव-नंदी
प्रमुखुलगु त्यागराज वंद्युलकु ब्रह्मानंद सुखांबुधि मर्म
विदुलकु, संगीत कोविदुलकु, म्रोक्केद।"

ऊपर की नामावली में लक्ष्मी, पार्वती और सरस्वती की सभर्तृक वंदना के बाद नारद की वंदना में त्यागराज का एक विशेष उद्देश्य है। वे नारद को ही अपने नाद-गुरु के रूप में स्वीकार करते हैं। वैसे लौकिक दृष्टि से शोंठि वेंकटरमणय्या के पावन चरणों में बैठ कर उन्होंने संगीत के प्रारम्भिक पाठ पढ़े थे। अपने मातामह वीणा कालहस्तय्या के संसर्ग से भी वे काफी प्रभावित हुए। अपने पूज्य पिता रामब्रह्मम् के सान्निध्य में उन्होंने वाल्मीकि रामायण का भी गहन अध्ययन किया था। माता सीतम्मा के मुँह से पुरन्दरदास, रामदास, नारायण तीर्थ आदि कई संतों के अनेक गीत सुन कर उन्होंने संगीत रचना की प्रेरणा प्राप्त की। स्वामी रामकृष्णानंद से उन्होंने राम नाम के तारक मन्त्र का उपदेश भी ग्रहण किया था। ये सब त्यागराज के लिए लौकिक प्रेरणा के विभिन्न स्रोत रहे। पर उनको नादयोगी बना कर स्वर साधना को जीवन्मुक्ति के साधन के रूप में आविष्कृत करने की लोकोत्तर क्षमता प्रदान करने का श्रेय महर्षि नारद को ही मिलना चाहिए जो वृद्ध सन्यासी का वेष धारण कर उनको स्वरार्णव दे गये थे। त्यागराज ने अपने अनेक गीतों में नारद का गुण-गान किया और स्पष्ट शब्दों में उनको अपना गुरु स्वीकार किया। नाद-कमल पर भ्रमर की तरह विचरण करते-से प्रतीत होने वाले नारद को 'वेद जनित वीणा-वादन तत्वज्ञ' बताते हैं। ऐसे दिव्य गायक को अपने गुरु के रूप मे पा कर वे आनंद विभोर हो जाते और कहते हैं—

"श्री नारदमुनी गुरु राय! कंटिमेनाटि तपमो गुरुराय!
मनसार कोरिति गुरु राय! नेडेकनुलार कनुगोंटिमि गुरुराय!

नीसेव दोरिकेनु गुरुराय ! भव पाशमु दोलगेनु गुरुराय !
नीवे सुज्ञान सुखी गुरुराय ! नीवे अज्ञानशिखी गुरुराय !
राजिल्लु वीणे गल गुरुराय ! त्यागराजुनि ब्रोचिन गुरुराय !"

(हे गुरुदेव नारद ! कई दिनों की तपस्या के फल स्वरूप मैंने आपको गुरु के रूप में पाया है। आपके दर्शन के लिए मेरा मन बहुत ही उत्कंठित था और मेरी मनोकामना आज सफल हो पाई है। हे गुरुदेव ! आपकी सेवा का भाग्य मिला तो मेरा भव बंधन विच्छिन्न हो गया। आप सच्चे ज्ञान की निधि हैं और अज्ञान को भस्म करने वाले अनल हैं। आपके हाथ में हमेशा वीणा विराजमान होती है और आप त्यागराज का उद्धार करने सद्गुरु के रूप में प्रकट हुए हैं।)

हो सकता है, त्यागराज ने यह गीत उस समय लिखा हो जब उन्होने स्वरार्णव नाम का ग्रन्थ पा कर उसी रात को सपने में नारद को देखा था। नारद का जब कभी त्यागराज स्मरण करते हैं उनको वे प्रायः वीणावादन तत्वज्ञ बताते हैं। यहाँ पर स्मरणीय है कि त्यागराज भी अपने गुरुदेव नारद की 'महती' (वीणा) से प्रभावित हो कर वीणा-वादन में न केवल विशारद बन गये, बल्कि उसके तत्व के भी ज्ञाता हुए। इस प्रसंग में याज्ञवल्क्यस्मृति का यह श्लोक भी मननीय है :

"वीणावादनतत्वज्ञः श्रुतिजातिविशारदः ।
तालज्ञश्चाप्रयासेन मोक्षमार्गं नियच्छति ।।"

यहाँ पर वीणा-वादन और श्रुति जाति और ताल के ज्ञान को मोक्ष का साधन बताया गया है। त्यागराज शंकर को भी वीणा-वादन परायण बताते हैं। वास्तव में नाद-साधना की संगति करने वाले प्रत्येक वाद्य यन्त्र को त्यागराज समान महत्व देते हैं। मृदंग के मृदुमधुर निनाद से परमात्मा को प्रसन्न बनाने में कुशल कलाकार की प्रशंसा करते हुए त्यागराज कहते हैं :

"सोगसुगा मृदंगतालमु जत गूर्चि निनु
सोक्कजेयु धीरुडेव्वडो ?
निगम शिरोर्थमु गलिगन निज वाक्कुलतो, स्वर शुद्धमुतो
यति विश्रम सद्भक्ति विरति द्राक्षारस नव रस युत
कृति चे भजियिंचु युक्ति त्यागराजुनि तरमा ? श्रीराम ।"

(न जाने कौन कुशल कलाकार मृदंग की आवाज में ताल का लय मिला कर प्रभु को प्रसन्न कर सकता है ? वेदान्त का तात्विक विवेचन प्रस्तुत करने वाली रमणीय वाणी से संपन्न हो स्वरों का उच्चारण शुद्ध हो, ताल की गति नियत हो, ठीक स्थान पर विश्राम हो, सच्ची भक्ति-भावना हो, सांसारिक प्रलोभन से दूर हों और कृतियों (गीतों) की रचना नव रस बरसाने वाली और द्राक्षापाक जैसी आपातमधुर हो । जहाँ पर इतनी बातों का एक साथ संगम हो, एसी एकांत साधना क्या त्यागराज के लिए संभव है ?)

इन पंक्तियों में स्वर सिद्ध सम्राट् त्यागराज भी अपनी नादसाधना की परिपूर्णता के सम्बन्ध में कुछ अप्रत्यय की भावना प्रकट करते हैं । विवेक वर्द्धिनी वाणी विशुद्ध स्वर सिद्धि और नव रस निष्यंदिनी लयज्ञता के मंजुल सामंजस्य से ही प्रणवनाद राग की निष्पति संभव है, यही त्यागराज का प्रतिपाद्य विषय है । इन तीनों के साथ जब तक सच्ची भक्ति भी न हो तब तक नाद योग का सच्चा आशय सिद्ध नहीं होता । साधना की इस गरिमा से परिचित सन्त के मत में सिद्धि के सम्बन्ध में कुछ संशय का उत्पन्न होना स्वाभाविक है । पर वे अपने संशय को भी बड़ी सात्विक और सारगर्भित भाषा में प्रकट करते हुए कहते हैं कि क्या यह त्यागराज के लिए सम्भव है ? उनका आशय था कि इतनी महती साधना केवल त्यागराज के 'पुरुषार्थ' से संपन्न नहीं हो सकती । उसके लिए प्रभु का सहारा चाहिए । वास्तव में प्रभु की अनुकम्पा ने त्यागराज को इस स्वर साधना में निष्णात बना दिया था । तभी तो वे सकृतज्ञ स्वर में कहते हैं—"नाद ब्रह्मानन्द रसाकृतिगलनो दयचे राम नित्यानंदुडैति ।" (नाद ब्रह्म से निष्पन्न आनन्द रस के रूप में अवतरित आपकी कृपा से मुझे चिरंतन आनन्द की प्राप्ति हुई है, राम !)

त्यागराज को प्रभु के वरदान के रूप में जो प्रणव नाद मिला था, उसी से वे प्रभु की अर्चना करते थे । उन्होंने इसी प्रणवनाद को 'राग' का रूप दिया और उसे शत शत भंगिमाओं से अनुरंजित कर सैकड़ों राग रागिनियों से रत्नहार बना कर प्रभु को अलंकृत किया था । 'शत राग रत्न मालिकाओं' से समलंकृत अपने प्रभु के रूप वैभव को देख कर वे पुलकित हो कहते हैं— "आइए, हम सब मिल कर इस राग रूपी राम की सेवा करें और जीवन का सौभाग्य प्राप्त करें । वेद, शास्त्र, पुराण आगम-सब का परमार्थ प्रस्तुत करने वाला यह गीतार्थ योगियों को भी परमानन्द प्रदान करता है । पहुँचे हुए भक्त भी इन गीतों को गा-गा कर परमात्मा में एकाकार हो जाते हैं ।

4

त्यागराज को इस भव सागर से पार करानेवाली तारक नौका 'यही राग रत्नमालिका' है।"

यहाँ पर ध्यान देने की बात यह है कि त्यागराज ने अपनी रचना को 'राग रत्नमालिका' कह कर राग भाव और लय की सामासिक सुषमा की ओर संकेत किया है। यह कहना कठिन है कि त्यागराज के लिए राग (संगीत) अधिक प्रधान था या भाव (भक्ति)। संगीत और साहित्य दोनों उनके लिए समान महत्व के हैं। उनके मन में भक्ति भावना अपने आप कुछ शब्दों में गुनगुनाती है तो उनकी संगीतज्ञता उन शब्दों को स्वर का परिधान प्रदान करती है। जैसा भाव हो, वैसा ही राग निकलता है। भाव स्वयं अपने अनुकूल राग का चयन कर लेता है। जब भाव और राग साथ-साथ चलते हैं तो उनकी अन्तरात्मा में अन्तस्सलिला की तरह निरन्तर चलने वाली लय-सरिता उस भावभीनी रागिनी को सुन्दर समतल में आवश्यक उतार-चढ़ाव के साथ ले जाती है। सरल हृदय से निकलने वाले भाव सरस रागिनी के सहारे समरस लय का आश्रय पा कर सात्विक साधना को सयश उत्तीर्ण बना देते हैं। त्यागराज के किसी भी गीत में यह अद्भुत सामंजस्य देखा जा सकता है। गीत का आरम्भ अत्यन्त साधारण होता है जैसे वे अपने प्रभु से आत्मीयता के साथ कुछ कहने जा रहे हों और धीरे-धीरे उसे पल्लवित किया जाता है। उदाहरण के लिए—

"नोव भारमा ? रघुराम !
भुवन मेल्ल नीवै युनुडनन्नोकनि।"

यह गीत की प्रारंभिक पंक्ति है जिसको 'पल्लवि' कहा जाता है। इसमें त्यागराज अपने प्रभु राम से पूछते हैं। "हे रघुराम ! क्या मेरी रक्षा का भार आपके लिए दुर्भर बन गया है ? कहते हैं, आप सारे संसार में फैले हुए हैं। फिर क्या मैं अकेला आपके लिए भार बन गया हूँ ?"

गीत की दूसरी पंक्ति 'अनुपल्लवि' में वे फिर कहते हैं—"आपको वासुदेव कह कर लोग आपकी प्रशंसा करते हैं क्योंकि आपने अपने अन्दर करोड़ों लोगों को समा लिए थे। फिर मैं अकेला कैसे भार हो गया हूँ।"

गीत की तीसरी पंक्ति में जिसे 'चरण' कहा जाता है, त्यागराज कुछ दृष्टांत देते हैं। क्षीर-सागर के मंथन के समय प्रभु ने सभी देवताओं की रक्षा

की थी और गोप-गोपीजन की रक्षा के लिए आपने पहाड़ उठाए थे। लेकिन जब त्यागराज की बात आई तो प्रभु के लिए वह भार कैसे बना ?

इस प्रकार पल्लवि, अनुपल्लवि और चरण (आवश्यकतानुसार चरण एक या अनेक हो सकते हैं) तीन सोपानों में गायक अपने भावों को पल्लवित करते जाते हैं। इस परम्परा को प्रचलित और प्रशस्त बनाने का श्रेय त्यागराज को है। यहाँ पर यह भी स्मरणीय है कि ऊपर दिया गया गीत गाते समय ही त्यागराज ने एक बहुरंगी राग का प्रयोग किया था जिसे उनके सहगायक समझ नहीं पाये। जैसा भाव, वैसा राग चुनने में स्वतंत्रचेता त्यागराज को एक अपूर्व राग का ही सृजन करना पड़ा जो बाद में बहुदारि (बहुराही) के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

त्यागराज उच्चकोटि के गायक और संगीतज्ञ होते हुए भी जन साधारण के उद्धार के लिए ही अपनी गान-कला का उपयोग किया था। प्रभु की आराधना के लिए ज्ञान का मार्ग सबसे श्रेष्ठ और परिनिष्ठित होते हुए भी वह सामान्य जनता की पहुँच में नहीं होता। इसलिए सन्त त्यागराज ने 'बहुजन हिताय' भक्ति युक्त संगीत के आधार पर 'गान मार्ग' का सबसे सरल उपाय निकाला जिससे सभी लोग सनातन सत्ता का साक्षात्कार कर सकते हैं। यही त्यागराज की भजन परम्परा है जो उनकी दिन चर्या का विशिष्ट अंग बन गई थी। 'गीत गाओ और मुक्ति पाओ' का यह आन्दोलन त्यागराज ने अपने समाज में अत्यन्त लोकप्रिय बनाया था। उनकी भजन मंडली की यह विशेषता थी कि उसमें न केवल भक्त लोग सम्मिलित होते थे बल्कि राजा महाराजा तक जाते थे। उच्चकोटि के गायक भी उसमें सम्मिलित हो कर अपने को सम्मानित समझते थे। प्रख्यात दार्शनिक और सन्त भी इन भजन गोष्ठियों से लाभान्वित हुआ करते थे। इस प्रकार त्यागराज का भजन या कीर्तन का कार्यक्रम भिन्न-भिन्न रुचियों के प्रबुद्ध व्यक्तियों के लिए एक संगम स्थल-सा बन गया था।

उन दिनों भजन-कीर्तन करने वालों को 'भागवत' कहा जाता था और गान कला का प्रदर्शन करने वालों को संगीतज्ञ। उच्चकोटि के संगीतज्ञ भागवतों की गोष्ठियों में सम्मिलित होना पसंद नहीं करते थे। प्रायः विद्व-त्समाज में या राजा के दरबार में वे अपनी शास्त्रज्ञता और कला को प्रदर्शित करते थे। धीरे-धीरे इन दोनों के बीच में वैषम्य बढ़ता जा रहा था।

56225

ऐसे समय पर त्यागराज ने अपनी उच्च कोटि की नाद साधना और परिष्कृत भक्तिभावना के आधार पर दोनों को एक मंच पर प्रतिष्ठित किया था। यह त्यागराज का एक अपूर्व योगदान है जिसके लिए दक्षिण भारत का भक्त समाज उनका चिर ऋणी रहेगा।

त्यागराज की भजन मण्डली केवल उनके भजन-मन्दिर या पूजा-गृह तक सीमित नहीं थी। पूजागृह में तो नित्य नियमित रूप से राम पंचायतन की पूजा हुआ करती थी और अवसर के अनुकूल कीर्तन कार्यक्रम भी। इसके अलावा नगर की सड़कों पर भी प्रभु का कीर्तन करते हुए त्यागराज और उनके शिष्य बाहर घूमा करते थे। यह चलता फिरता भजन-समाज त्यागराज के नादब्रह्म का जंगम रूप था जो देखने वालों को नयनाभिराम लगता था। त्यागराज स्वयं हरिदासों की इस मण्डली का सुन्दर वर्णन प्रस्तुत करते हुए कहते हैं—

"सगतिगानु मृदंग घोषमुल चे पोंगुचु वीधुल केगुच मेरयुचु।
चक्कनि हरि चे जिक्किनिमनि मति सोक्कुचु नाममे दिक्कनि पोगडुचु।
दिट्टमुगा नड़ कट्टुतो अडुगलु मेट्टचु तालमु पट्टि गलगल्लनग।
ज्ञानमुतो रामध्यानमुतो मचि गानमुतो मेन दानमोसंगुचू।
राजराजुनिपै जाजुलु चल्लुचु राजिल्लुचु त्यागराजुनि तो गूडि।
हरिदासुलु वेडले मुच्चट गनि आनंदमाये दयालो।"

(दयाराम राम! आपका गुणगान करते हुए नगर संकीर्तन के लिए निकली भजनमण्डली को देख कर बड़ी प्रसन्नता होती है। मृदंग की संगति में उमंग भरी आवाज़ में नगर को जगमगाने वाली मण्डली की शोभा देखते ही बनती है। राम के नयनाभिराम रूप और उनके रमणीय नाम के ध्यान में अपने को खो कर परवश मन से परमात्मा की प्रशंसा करने वाले ये भक्त कमर कसकर पग-पग पर पदनिधि का आस्वादन करते हुए नाद सौंदर्य में लीन होकर कदम बढ़ाते जा रहे हैं। सच्चा ज्ञान, राम का ध्यान और मनोहर गान-तीनों बातें उनको आत्मदान के लिए प्रेरित कर रही हैं। राजाओं के अधिराज राजाराम पर जाति कुसुमों की वर्षा करते हुए त्यागराज के साथ अग्रसर होने वाली यह मण्डली सचमुच धन्य है।)

धन्य क्यों नहीं! ज्ञान, ध्यान और गान की त्रिवेणी जहाँ बहती हो, प्रतिभा प्रभु के ध्यान से जब परिणत और प्रयोजनवती बन रही हो और

स्वरार्णव पंचनद की खोज में चल कर उसके पग-पग को प्रयाग बना रहा हो, वहाँ की धरती का प्रत्येक कण धन्य है। त्यागराज की नाद साधना में कोई ऐसी स्पर्शवेदिता विद्यमान थी जो पंडित और मूर्ख, संत और साधक, गायक और सेवक सबको अपने स्पर्श से हिरण्मय बना देती थी। वाणी के समस्त ऐश्वर्य पर प्रभुता पाने की क्षमता रखने वाला कोई सुवर्ण बिंदु उनकी नाद-बिंदु कला की उदात्त उपासना ने समुपार्जित कर लिया था। इसीलिए उनकी साधना अक्षोभ्य और अपने में साध्य है।

पद-निधि का राज

"प्रभु-पद जो न रचाय पद, गीत अगीत समान"

त्यागब्रह्म की भक्तिभावना ने राम को परब्रह्म के रूप में देखा तो उनकी स्वर साधना ने राग को नादब्रह्म के रूप में देखा। पर इन दोनों से बढ़ कर उनकी शब्द ब्रह्म की आराधना है जिसने उनको पदनिधि का सम्राट बना दिया है। अपनी निर्मल भावना और निश्चल साधना के बल पर उन्होंने जिस पदनिधि को प्राप्त किया था, उसके वे अनन्य आराधक और एकांत अधिकारी भी थे क्योंकि उनकी यह पदनिधि साधन और साध्य दोनों थी। उनके भावुक गीतों में प्रयुक्त पदों की निधि के रूप में यह साधन थी और रामभद्र के भद्र पदों की अक्षय निधि के रूप में यह साध्य भी थी। इन्हीं दो निधियों को छोड़ कर त्यागराज के मन में और किसी भी निधि के प्रति कोई आकर्षण नहीं था। राजा महाराजा लोग उनको अपने दरबार में बुला कर उनका गायन सुनने के लिए लालायित थे, पर वे प्रभु के सान्निध्य को छोड़ कर और किसी भी पार्थिव प्रलोभन में पड़ना नहीं चाहते थे। इसीलिए त्यागराज को जिस पद निधि का राज मिला था, उसी ने उनको सच्चे अर्थों में संत 'त्यागराज' बनाया है। अगर वे राजा थे तो अपने त्याग योग और राग राजा थे और वह भी अपने आराध्य के प्रति अनन्य अनुराग के बल पर। उनको इस बात का सात्विक अभिमान था कि रामभक्ति का साम्राज्य उन्हें मिला था जो ऐहिक और आमुष्मिक दोनों संपत्तियों से भरा पड़ा है। उनकी भक्ति-भावना नाद साधना और शब्द योजना तीनों का चरम लक्ष्य प्रभु पद की प्राप्ति में ही था।

पर त्यागराज के भक्त और आराधक उनको भक्त और संगीतज्ञ के रूप में जितना जानते हैं उतना एक साहित्यिक विभूति के रूप में नहीं। लेकिन जब हम उनके साहित्यिक व्यक्तित्व की ओर ध्यान देते हैं तो चकित हो जाते हैं कि उनकी सरल सात्विक और स्वाभाविक पद-योजना में कितनी गहराई भरी हुई है और कितनी हरियाली छायी हुई है। उनका एक-एक गीत कला

का कमनीय खण्ड है जिसे वे 'कृति' कहा करते थे। वास्तव में उनके प्रत्येक गीत को अपने में पूर्ण और रस निर्भर 'कृति' के रूप में स्वीकार किया जा सकता है। कहते हैं कि उन्होंने कुल मिला कर चौबीस हजार 'कृतियों' की रचना की थी। लौकिक यशस्विता के प्रति वे इतने निर्लिप्त और निरीह थे कि उन्होंने अपनी कृतियों का संकलन करने का कभी प्रयत्न नहीं किया था। भावावेश में वे अपने प्रभु के गुणगान में जो कुछ कहते थे या गाते थे उसी से वे सन्तुष्ट थे और उसी को अपना साध्य भी मानते थे। उनके शिष्य उन गीतों को बाद में लिपिबद्ध किया करते थे। इस प्रकार उनके सारे गीत उनके सारे शिष्यों में वितरित हो गये थे। अब उनके केवल छह सात सौ गीत मिलते हैं जिनके आधार पर उनकी वाग्विभूति को हम हृदयंगम कर सकते हैं।

त्यागराज अपने जीवन के लक्ष्य से भलिभांति परिचित थे और एकनिष्ठ हो कर उसी दिशा में अग्रसर भी होते थे। इसी लक्ष्य की ओर संकेत करते हुए वे अपने प्रभु से कहते हैं—"आप यह न समझें कि मैं और किसी काम के लिए पैदा हुआ हूं। आपके पावन चरित का गायन ही मेरे जीवन का एकमात्र प्रयोजन है। वाल्मीकि जैसे प्रशस्त तपस्वियों ने आपका गुणगान किया तो इससे मेरा मन कैसे भरेगा ?"

इसी प्रकार वे अपने प्रभु के अवतार का भी प्रयोजन जानते हुए भी उनसे पूछते हैं—'आपने किस प्रयोजन से राम का अवतार ग्रहण किया है ? रावण से लड़ने के लिए या अयोध्या का पालन करने के लिए ? योगियों को प्रसन्न करने के लिए या भव-रोगियों को बाधा से मुक्त करने के लिए ? हो सकता है रागरत्न मालिकाओं के शिल्पी त्यागराज को वर प्रदान करने के लिए आपने पृथ्वी पर जन्म लिया हो।" भक्त जैसे-जैसे भगवान के निकट पहुँच जाते हैं, उनमें प्रतिपत्ति और प्रत्यय की भावना भी बढ़ती जाती है। तभी तो त्यागराज का भावुक मन इतनी महती कल्पना का अधिकार प्राप्त कर सका है। उनके सैकड़ों रागों में गुंथे हुए रत्नहारों को स्वीकार कर उनको अनुगृहीत करने के लिए ही वास्तव में भगवान राम का अवतरण हुआ था, यह त्यागराज जैसे पहुँचे हुए संत ही कह सकते हैं। इसी मनोराज्य की मधुमती भूमिका पर पहुँच कर वे कहते हैं—"राम कथासुधारस पानमोक राज्यमु चेसुने" (रामकथा की सुधा का पान किसी राज्य पालन के सुख से कम सुखद नहीं है।) त्यागराज का यही सच्चा राज उनकी पदनिधि का परमेप्सित राज है।

त्यागराज के जीवन का लक्ष्य जितना उदात्त था, उनकी साधन संपत्ति भी उतनी ही व्यापक और उत्कृष्ट थी। रामब्रह्म जैसे रामभक्त पिता, गिरिराज जैसे वाग्विशारद पितामह और पचनदब्रह्म जैसे प्रतिष्ठित प्रपितामह को पाकर त्यागराज अपने को धन्य समझते हैं। अपने एक गीत में वे कहते हैं कि हमारे वंश के पूर्वजों की तपस्या का ही यह फल है। संगीत और साहित्य इस प्रकार उनको पैतृक संपत्ति के रूप में सहज रूप से प्राप्त हुए तो उनके प्राक्तन संस्कारों ने उनको आजन्म भक्त बना दिया था। बचपन में पिता के पथ प्रदर्शन में उन्होंने वाल्मीकि रामायण का अध्ययन किया था और उसका प्रभाव उनके कई गीतों में देखा जा सकता है। वाल्मीकि रामायण के अतिरिक्त अद्भुत रामायण, आनन्द रामायण, अध्यात्म रामायण, अगस्त्य संहिता बृहद्धर्मपुराण, रामरहस्योपनिषद्, उपेय नाम विवेक आदि कई राम-कथाश्रयी कृतियों का प्रभाव त्यागराज की रचनाओं पर स्पष्ट दिखाई देता है। वे नित्य नियमानुसार भक्तपोतन्ना के द्वारा तेलुगु में प्रणीत 'भागवत' का पारायण किया करते थे। यही कारण है कि त्यागराज के कई गीतों में पोतन्ना की मदार मकरंद की सी माधुर्य रस निष्यंदिनी शैली दिखाई देती है। उनके कुछ गीत सरल तेलुगु में हैं, कुछ पूरे संस्कृत में हैं और अनेक गीतों में दोनों का सुखद सम्मिश्रण पाया जाता है। चाहे वे तेलुगु शब्दों का प्रयोग करते हों या संस्कृत निष्ठ पदावली का, उनकी शैली प्रसन्न, प्रांजल और आपातमधुर होती है। उदाहरण के लिए उनका एक वदना-गीत संस्कृत और तेलुगु की मिली-जुली माधुरी का मनोहर दृश्य प्रस्तुत करता है—

"वंदनमु रघुनंदन सेतुबंधन भक्तचंदन राम !
श्रीदमा ना तो वादमा ने भेदमा इदि मोदमा राम !
श्रीरमा हृच्चारमा ब्रोव भारमा रायबारमा राम !
विंटिनि नम्मुकोंटिनि शरणंटिनि रम्मटिनि राम !
ओडनु भक्ति वीडनु ओरुल वेडनु नीवाडनु राम !
कम्मनि विडमिम्मनि वरमु कोम्मनि पलुकरम्मनि राम !
न्यायमा नीकादायमा इंक हेयमा मुनि गेयमा राम !
क्षेमम् दिव्य धामम् नित्य नेमम् राम नामम् राम !
वेगरा करुणासागरा श्री त्यागराज हृदयागारा राम !"

अर्थ निरपेक्ष शब्द सौंदर्य का सुन्दर उदाहरण उपर्युक्त गीत प्रस्तुत करता है। भक्त पोतन्ना की शैली का स्मरण कराने वाले अनेकों गीत त्यागराज

की राग रत्नमालिका में दिखाई देते हैं। शब्द सौंदर्य के प्रलोभन में पड़ कर वे कभी अर्थ गौरव की उपेक्षा नहीं करते। उनके लिए अर्थ और शब्द दोनों महत्वपूर्ण हैं। वाल्मीकि की अर्थ गंभीरता को त्यागराज ने कितनी गहराई से ग्रहण किया था इसके प्रमाण में यह गीत प्रस्तुत किया जा सकता है—

"मुनि कनु संग तेलिसि शिवधनुवुनु विरचिन समयमुन
अलकल्ललाडग गनि आ राण्मुनि एटु पोगेनो ?"

(मुनि विश्वामित्र की आँखों का इशारा पाकर जब राम ने शिव का चाप तोड़ डाला था और इतना असाधारण काम करने पर भी उनके घुंघराले बालों के तनिक हिल जाने के अलावा उनके शरीर में परिश्रम का कोई आभास तक नहीं दिखाई पड़ा था तो पता नहीं महर्षि विश्वामित्र का मन आनन्द से आप्लावित होकर किस ओर बह चला था।)

इन दो पंक्तियों में त्यागराज ने रस सागर ही भर दिया है। यहाँ पर 'मुनि कनु संग' (मुनि की आँखों का इशारा) वाली उक्ति विशेष रूप से मननीय है। इस प्रसंग में स्मरणीय है कि वाल्मीकि के विश्वामित्र राम को धनुष तोड़ने को नहीं कहते हैं, केवल देखने को कहते हैं (वत्सराम! धनुः पश्य)। तुलना के लिए रामचरितमानस की 'उठहु राम भंजहु भव चापू' वाली उक्ति का इससे मिलान किया जा सकता है। इस इशारे की बारीकी को त्यागराज ने ठीक-ठीक पहिचाना और अपने गीत में उतार लिया। मुनि, कनु धनुवुनु, विरचिन आदि शब्दों में अत्यन्त कोमल और सरल ध्वनियों का प्रयोग कर त्यागराज ने यह भी सिद्ध किया कि राम ने कितनी आसानी से धनुष तोड़ा था। यह गीत राग मध्यमावती में गाया जाता है। अतः राग और भाव का भी अद्भुत सामंजस्य है। इस प्रकार के अनेक गीत त्यागराज को आदिकवि की मनोभूमिका के निकट से निकट पहुँचा देते हैं।

एक और गीत में त्यागराज राम को अपना पिता और सीता को अपनी माता कहते हैं। इसमें उनकी भावुकता के साथ-साथ वास्तविकता का भी परिचय मिलता है क्योंकि उनके पिता का नाम रामब्रह्म था और माता का नाम सीतम्मा। यह तो केवल त्यागराज का उक्ति वैचित्र्य मात्र है जिसकी किसी भी परिमार्जित लेखनी से अपेक्षा की जा सकती है। पर त्यागराज का सच्चा हृदय तब प्रकट होता है जब वे इस रिश्तेदारी में लक्ष्मण को अपने भाई बताते हैं। सामान्य बुद्धि से सम्पन्न किसी भी व्यक्ति की यह समझ में आने

वाली बात नहीं है कि जब राम पिता हुए तो लक्ष्मण भाई कैसे हुए ? राम और लक्ष्मण तो भाई ही हैं। यह समझ कर कि भारतीय शिष्टाचार के अनुसार बड़े भाई को पिता के समान माना जाता है इस पहेली का समाधान कर लिया जा सकता है। पर वास्तव में वाल्मीकि की सुमित्रा का यह वाक्य ही इसका वास्तविक समाधान प्रस्तुत कर सकता है—

> "रामं दशरथं विद्धि मां विद्धि जनकात्मजां।
> अयोध्यामटवीं विद्धि गच्छ तात यथासुखं।।"

सुमित्रा अपने पुत्र को राम के साथ वनवास जाते समय यह उपदेश देती है कि भाई राम को दशरथ के समान पिता समझो और भाभी सीता को मेरे समान माता समझो। सुमित्रा की यह मंत्रणा लक्ष्मण के कानों में जितनी गहरी बैठ गई उससे भी अधिक गहराई तक त्यागराज के कानों में पैठ गई है। ऊपर के गीत में राम को पिता कहकर लक्ष्मण को भाई कहने में त्यागराज का यही आशय है।

जहाँ वाल्मीकि की बात समीचीन प्रतीत हो वहाँ त्यागराज उसे इतनी बारीकी के साथ अपने गीतों में उतार लेते हैं। पर साथ ही अन्य राम काव्यों में जो सरस उद्भावनाएँ देखने में आती हैं, उनको आत्मसात् करने में वे संकोच नहीं करते। त्यागराज की शबरी राम को जूठन ही खिलाती है। उनकी स्वयंप्रभा का राम स्वयं अभिनन्दन करते हैं और उनको अटल पद पर प्रतिष्ठित करते हैं। त्यागराज की सीता अपने असली रूप में रावण के साथ लंका में प्रवेश नहीं करती हैं। माया सीता का ही रावण के द्वारा अपहरण होता है। सच्ची सीता अग्नि में प्रवेश करती है और रावण-वध के बाद फिर अग्निमुख से आविष्कृत होती है। ये सारी घटनाएँ वाल्मीकि रामायण से भिन्न हैं।

इस प्रकार की अवाल्मीकीय घटनाओं में चमरी की प्राणरक्षा का प्रसंग विशेष रूप से उल्लेखनीय है। जब सीता राम और लक्ष्मण वनवास में थे तब सीता जी एक चमरी (हिरन जाति का जानवर) को देख कर उसकी पूंछ के सौन्दर्य से काफी प्रभावित होती है। सीता का मनोरथ जान कर राम उसकी पूंछ पर तीर चलाते हैं। चमरी को अपनी पूछ सबसे प्यारी होती है, पर राम उससे भी प्यारे हैं। इसलिए वह अपनी पूंछ को सिर से छिपा लेने का प्रयत्न करती है जिससे उसकी पूंछ बच जाए और उसके प्राण राम की

शरण में अमरत्व को प्राप्त करें। कुशाग्र बुद्धि और करुणासागर राम चमरी की उदारता को तुरन्त समझ लेते हैं और पहले बाण को विफल बनाने के लिए एक और बाण उससे भी तीव्र गति के साथ छोड़ते हैं। इस प्रकार बाद में निकला बाण पहले बाण को गिराकर चमरी के प्राणों की रक्षा करता है। यह सारी घटना रामकथा की परम्परा में एक अनोखी कल्पना है जिसे त्यागराज ने एक सुन्दर गीत में अभिलिखित किया है। गीत के उपक्रम में राम की महिमा को अविवर्णय राम को वाचामगोचर (वाणी की पकड़ में नहीं आने वाला) कहा जाता है। यहाँ पर 'यतो वाचो निवर्तते अप्राप्य मनसा सह' वाली श्रुति का अनायास स्मरण हो जाता है।

त्यागराज के कई गीतों में इस प्रकार की श्रुति-सम्मत वाणी का स्पन्दन पाया जाता है। कामवासना और अर्थलालसा की तृप्ति के लिए गान कला का दुरुपयोग करने वाले मूर्खों की परिनिन्दा करते हुए वे लिखते हैं कि ये अविवेकी लोग स्वर लय का रहस्य पहिचाने बिना ऊपर से अपने को भक्त कहते हैं और भीतर ही भीतर कामिनियों का मन बहला कर अपनी ओर खींचने में तत्पर रहते हैं। त्यागराज का इस आशय का गीत पढ़ते समय "गायंतस्त्रियः कामयते" वाली श्रुति का स्मरण हो आता है। इसी प्रकार 'आकाश शरीरमु ब्रह्ममने' वाले गीत में 'आकाश शरीरं ब्रह्म' वाली बात बरबस याद आती है। त्यागराज स्वयं एक गीत में कहते हैं कि प्रणव नाद सातों स्वर, वैदिक मंत्र, शास्त्र, पुराण, चौसठ कलाओं आदि का भेद जानने में समर्थ मानव शरीर पा कर मुक्ति मार्ग को छोड़ कर व्यर्थ का वाद विवाद करने से क्या लाभ है? इसी सिद्धांत के अनुसार वे भारतीय दर्शन के मूलभूत सूत्रों से अपनी रागरत्नमालिका को पिरोते हैं। सरल से सरल शब्दों में गम्भीर से गम्भीर दार्शनिक विचारों को हृदयंगम शैली में व्यक्त करना त्यागराज के लिए अत्यन्त सहज काम है। नादात्मक संसार की सारी लीला की मूल प्रेरणा नारदीय गान में विलीन प्रभु से प्राप्त बताते हुए केनेपरिषद् का सारा सन्देश सार रूप में कहते हैं—

"नीवु लेक ये तनुवुलु निरतमुगा नडचुनु ?
नीवु लेक ये तरुवुलु निक्कमुगा मोलचुनु ?
नीवु लेक ये वामलु नित्यमुगा कुरियुनु ?
नीवु लेक त्यागराजु नीगुणमुलेट्लु पाडुनु ?"

(आपके सहारे के बिना कोई शरीर कैसे चल सकता है ? आपके बिना कोई भी पौधा कैसे उग सकता है ? आपके बिना कहीं भी पानी कैसे पड़ सकता है ? आपके बिना यह त्यागराज आपका गुणगान कैसे कर सकता है ?)

बात बिलकुल मामूली और सीधी सादी-सी लगती हैं, पर इसी में परम तत्व की बात बताई गई है। इसी प्रकार प्रभु का प्रसन्न मुख मडल देखने के लिए उत्कंठित हो कर व्याकुल हृदय त्यागराज प्रभु से पूछते हैं, आप मेरी विह्वलता को जानते हुए भी मेरी रक्षा करने क्यों नहीं आते हैं ? आखिर विलम्ब का कारण क्या है ? क्या आपको समझने वाले आपके आस-पास कोई नहीं हैं ? आपके यहाँ क्या ऐसा हो सकता है ? क्या खगराज (गरुड) आपका आदेश पा कर भी आपकी अवज्ञा कर रहा है ? क्या उन्होंने कहा कि धरती गगन से बहुत दूर है ? पर प्रभु ! आप तो सारे संसार के स्वामी हैं। अगर आपकी यह स्थिति है तो मैं और किसके यहाँ जाऊँ ? किससे अपना दुखड़ा रोऊँ ? कृपा कर अविलम्ब अपने भक्त को अनुगृहीत करें।" इस निवेदन में अनुभूति की जो गहराई है, हृदय की जो विह्वलता है और अभिव्यक्ति की जो सरलता है, वह केवल अनुभव की वस्तु है। प्रभु के आदेश की उपेक्षा करने वाले गरुड को 'खगराज' कहने में त्यागराज के नाम से उनके मन में हो सकने वाली अहेतुक स्पर्द्धा की ओर बड़ा मार्मिक संकेत है।

सरल हृदय त्यागराज की वाणी में कहीं-कहीं वक्रोक्ति का वैभव भी पाया जाता है। उदाहरण के लिए अपने प्रभु को अनाथ सिद्ध करते हुए वे कहते हैं—

"अनाथुडनु गानु; राम नेननाथुडनु गानु !
अनाथुडवु नीवनि निगमज्ञुलु सनातनुल माट विन्नानु !
निराधरुलु जूचि ई कलि नराधमुलनेदर
पुराणपुरुष ! पुर रिपुनुत ! नागराज्शयन ! त्यागराजनुत ।"

(अनाथ मैं तो नहीं हूँ क्योंकि आप मेरे हैं। पर वास्तव में मैंने सनातन वैदिक विद्वानों के मुँह से सुना कि आप अनाथ हैं, आपका कोई नहीं है। आपका न मूल है, न मध्य और न अन्त। इसीलिए आप ही वास्तव में अनाथ हैं, मैं नहीं हूँ। पर मेरे प्रति आपकी यह निरादर भावना को देख कर कुछ दुरात्मा लोग समझते हैं कि मैं अनाथ हूँ। आप मेरे सबसे पुराने

परिचित हैं और इन्द्रादि देवता तक आपकी प्रशंसा करते हैं। पर आप तो निश्चिन्त हो कर शेषनाग पर सोते रहते हैं। तनिक त्यागराज की बिनती भी सुनिए।)

प्रभु का ध्यान अपनी ओर खींच लेने का कितना चतुर साधन है। इसी प्रकार राम नाम की महिमा का वर्णन करते हुए एक गीत में यमराज पर दया दिखाते हैं जो संसार में अपने दंड के लायक किसी नालायक व्यक्ति को नहीं पा कर बहुत परेशान हैं। राम मुखारि में यह गीत यमराज की दयनीय दशा का विशद वर्णन करता है—

"चिंतिस्तुन्नाडे यमुडु
संततमु सुजनुलेल्ल सद्भजन चेयुट चूचि।
शूल पाश धृत भट जालमुल चूचि मरि मी
कोलाहलमुलुडुगु कालमाये ननुचु।
वारिधि शोषिप जेयु क्रूर कुंभजुनि रीति
घोर नरकादुल नणचु तारक नाममुनु वलचि॥
दारि तेलियलेक तिरुगु वारलैन चालुनंटे
सारमनि त्यागराजु संकीर्तनमु पाडेरनुचु।"

(आजकल यमराज सचमुच परेशान हैं। सुजन-समाज को निरंतर भजन-गान में तत्पर देख कर यमराज बहुत दुखी हो रहे हैं। शूल, पाश आदि भयंकर दंड साधनों के साथ सुसज्जित अपने दूतों को देख कर वे कह रहे हैं कि अब तो आप लोगों की कोई खास आवश्यकता मालूम नहीं पड़ती है। जिस प्रकार अगस्त्य ने सागर के सारे जल को एक घूंट में पी डाला था, उसी प्रकार राम नाम के तारक मन्त्र ने सभी नारकीय प्राणियों के पाप धो डाले हैं और जो भूले भटके इधर उधर घूम रहे थे, वे भी त्यागराज के संकीर्तन से पवित्र हो गये हैं। यमराज को इसकी बड़ी चिंता है।)

प्रकारांतर से नाम संकीर्तन की महनीयता और प्रभु की प्रभविष्णुता को इस गीत में कितना उत्कर्ष प्रदान किया गया है, यह शब्दशक्ति के आराधक ही समझ सकते हैं। पद-निधि के सम्राट् त्यागराज की शब्द-शक्ति इतनी अमोघ है कि वह प्रभु का मौन भी भंग कर उनको भक्त से बातचीत करने के लिए बाध्य कर देती है। बार-बार बिनती करने पर भी मौन धारण कर बैठे प्रभु से त्यागराज कहते हैं।

"मारु बल्कफुसावेमिरा मा मनोरमण !
जार चोर भजन जेसितिना साकेत सदन !
दूरभारमंदु ना हृदयारविंदमंदु, नैलकोन्न
दारिनेरिगि संत सिल्लिनट्टि त्यागराजनुत ।"

(आप मेरी बात का जवाब क्यों नहीं देते ? आप तो मेरे मन के स्वामी हैं। मैंने किसी जार या चोर का भजन तो नहीं किया है। मैंने साकेत के स्वामी पर भरोसा रखा जो दूर रहते हुए भी हमेशा मेरे भीतर ही निवास करते हैं। मुझे इसी बात की प्रसन्नता थी। फिर आप जवाब क्यों नहीं देते ?)

ऊपर के गीत में 'जार' और 'चोर' शब्दों के प्रयोग में हल्का-सा व्यंग्य और गोपिका वल्लभ व नवनीत चोर के लोकोत्तर आचरण के प्रति कटाक्ष भी है। इसी प्रकार की आत्मीयता को प्रकट करने वाले एक गीत में वे प्रभु से यह आशंका प्रकट करते हैं—"पता नहीं मैंने किस राम पर भरोसा रखा था और कैसे फूलों से उसकी पूजा की थी ? नहीं तो मेरी श्रद्धा और पूजा का फल क्यों नहीं मिलता ? मुझे जिस राम का भरोसा था, वह शायद वह जितक्रोधी राम नहीं था जिसने काकासुर के रूप में आए हुए धूर्त्त जयन्त को एकाक्षी बनाकर छोड़ दिया था। वह शायद वह दुष्ट संहारक राम नहीं था जिसने सुग्रीव की रक्षा करने के लिए उसके दुराचारी भाई वालि का संहार किया था। वह शायद वह आश्रित वत्सल राम नहीं था जिसने शरणागत विभीषण को आश्रय और अभय प्रदान किया था। नहीं तो निरपराधी त्यागराज का यह निरादर क्यों होता ?"

भक्ति के भावावेश में त्यागराज अपने प्रभु से कई ऐसी बातें करते हैं जिनके लिए वे फिर पछताते हैं। पश्चात्ताप के क्षणों में उनका प्रशांत और प्रसन्न मन सोचता है, प्रभु ! इसमें आपका कोई दोष नहीं है, दोष तो मेरा है। सोना खोटा है तो सुनार क्या करेगा ?" फिर प्रभु से बिनती करते हैं, "मेरे अपराधों की ओर ध्यान । आपकी कृपा सबको ज्ञातव्य बना देती है। चपल चित्त हो कर मैंने जो कुछ किया है उस पर पछता रहा हूँ और आपकी शरण में आया हूँ।"

इस प्रकार विभिन्न भाव वीचिकाओं के बीच में उठते गिरते अंततः अंतरात्मा के अंतरंग का आश्रय पाने की प्रवृत्ति त्यागराज ने बहुत कुछ भक्त रामदास से सीखी होगी। भद्राचल के संत रामदास भी इसी प्रकार अपने

आराध्य राम से बड़ी आत्मीयता के साथ बातें करते हैं। जिस प्रकार तुलसी अपने आराध्य राम को निरुत्तर पाकर माँ जानकी से बिनती करते हैं. 'कबहुंक अब अवसर पाइ मेरि और सुधि द्याइबी कछु करुण कथा चलाइ' इसी प्रकार भक्त रामदास सीता माता से अनुरोध करते हैं कि वे अपने पति राम से एकांत में उसकी सिफारिश करे। इसी की ओर संकेत करते हुए त्यागराज एक गीत में कहते हैं 'अगर मैं रामदास होता तो शायद जानकी जी मेरी बात राम से कह देती।"

भक्त रामदास के अलावा पुरन्दरदास नारायण तीर्थ, जयदेव आदि कई संतों की वाणी से भी त्यागराज बहुत प्रभावित हुए। त्यागराज की भाषा और शैली का भाषाशास्त्रीय और काव्य शास्त्रीय अध्ययन किया जाए तो यह बात स्पष्ट होती है। दूर-दूर के देशों से आए हुए संतों की भक्तिगाथाओं का भी समावेश त्यागराज के गीतों में पाया जाता है। त्यागराज की भाषा में शरधि, वरधि, विराज (गरुड), भराज (चंद्रमा) कंजजास्त्र (ब्रह्मास्त्र) आदि संस्कृत के ऐसे अनेक शब्द पाए जाते हैं जो कहीं प्रचलित नहीं प्रतीत होते। इसका कारण भी अनुसंधेय है। उनकी भाषा में तमिल भाषी समाज में प्रचलित लोकोक्तियों और मुहाविरो का प्रचुर प्रयोग भी पाया जाता है 'दूध के बर्तन को दूध के स्वाद का क्या पता है' जैसी लोकोक्तियाँ तमिलभाषियों में आज भी प्रचलित हैं। इस प्रकार त्यागराज की शब्द योजना में हम उनके श्रुत पांडित्य का पर्याप्त प्रमाण पाते हैं। वे साहित्य शास्त्र के परिनिष्ठित विद्वान नहीं थे। जो कुछ ज्ञान उन्हें प्राप्त था, वह सहज रूप से परम्परा और पर्यावरण से प्राप्त हुआ था। वास्तव में वे लौकिक ज्ञान और शास्त्रीय पांडित्य को कोई विशेष महत्व नहीं देते थे। उदरपोषण के लिए कला की आराधना करना उनकी दृष्टि में निरर्थक और अनर्थक भी था। उनकी पदनिधि का सच्चा प्रयोजन प्रभु की पदनिधि की प्राप्ति में ही था। इस बात को स्पष्ट करते हुए वे लिखते हैं—

पदवि नी सद्भक्तियु गल्गुटे
चदिवि वेद शास्त्रोपनिषत्तुल सत्त तेलिय लेनिदि पदविया?
धन दार सुतागार संपदलु धरणीशुल चेलिमि ओक पदावया?
जप तपादि अणिमादि सिद्धुल चे जगमुल नेचुट आदि पदविया?
राग लोभ युत यज्ञादुलचे भोगमुलब्बुट अदि पदविया?
त्यागराजनुतुडौ श्रीरामुनि तत्वनु तेलियनि दोक पदविया?

(प्रभु के प्रति सच्ची भक्ति की प्रतिपत्ति ही जीवन में सच्चे पद की प्राप्ति है। वेद वेदांत, शास्त्र पुराण आदि का अध्ययन ही अपने में कोई विशेष पद-प्रद नहीं हो सकता जब तक उनके सारभूत तत्व को आत्मसात् न कर लिया जाए। धन-दौलत और दौलतमद राजा महाराजाओं के साथ मैत्री भी अपने में कोई सम्मान या विशिष्ट पद की बात नहीं है। जप तप आदि से प्राप्त अणिमा, महिमा आदि सिद्धियों से संसार को सताने में भी कोई विशेष गौरव की बात नहीं है। वासना और लोभ से प्रेरित हो कर यज्ञ यागादि का आचरण करके भोग लालसा में रत होना भी अपने में कोई पद प्रतिष्ठा की बात नहीं है। त्यागराज के आराध्यके तत्व को पहिचाने बिना सच्चे पद की प्राप्ति सम्भव नहीं है।)

इससे स्पष्ट होता है कि पार्थिव पद लालसा के प्रति त्यागराज के मन में लेश मात्र भी आकर्षण नहीं था। प्रभु-पद के प्रति विशुद्ध भक्तिभावना को छोड़ कर वे जीवन में और कुछ नहीं चाहते थे। तुलना के लिए यहाँ पर मानस-मराल गोस्वामी तुलसीदास की अन्तिम कामना को व्यंजित करने वाला यह मंजुल श्लोक मननीय है—

"नान्या स्पृहा रघुपते हृदयेऽस्मदीये।
सत्यं वदामि च भवानखिलांतरात्मा।।
भक्ति प्रयच्छ रघुपुंगव निर्भरां मे।
कामादि दोष रहितं कुरु मानसं च।।"

गोस्वामी जी प्रभु से कम से कम भक्ति की याचना तो कर सके। पर संत त्यागराज उसमें भी संकोच करते हैं क्योंकि वे जानते हैं कि प्रभु से कुछ माँगने पर किस-किस की क्या-क्या दशा हो गयी थी। सती साध्वी सीता ने वन विहार की इच्छा प्रकट की तो वह हमेशा के लिए पति के साहचर्य से वंचित हो गयी। नारद ने वर माँग कर नारी का रूप पाया। दुर्वासा अन्न माँग कर पेट का रोगी बन गया। देवकी ने पुत्र मांगा तो यशोदा की गोद भरी। गोपिकाओं ने प्रेम मांगा तो पतियों ने उनको छोड़ दिया। कामरूपिणी शूर्पणखा ने प्रेम याचना की तो उसकी नाक कट गयी। पहले की इन गाथाओं से घबरा कर त्यागराज इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि प्रभु की जिस पर जब कृपा होगी तब वे उसको अनुगृहीत करेंगे। जीवन के किसी मधुमय क्षण में वे सोचते हैं कि राम से अगर कुछ मांगना भी है तो कौन-सी चीज़ माँगी जा

सकती है ? पवन तनय हनुमान ने उनसे वैराग्य ले लिया तो सबसे छोटे भाई शत्रुघ्न ने अतिथियों के सेवा-सत्कार का भार अपने ऊपर ले लिया। भाई भरत ने प्रभु का सारा प्रेम ले लिया तो बहिष्प्राण लक्ष्मण ने भाई की परिचर्या का दायित्व अपने ऊपर ले लिया। प्रभु को अपने हृदय में, प्रतिष्ठित कर उनसे तादात्म्य की भावना स्थापित करने और सोहं की सुखद अनुभूति में तल्लीन होने का अधिकार सीतामाता ने अपने लिए आरक्षित कर लिया है। फिर त्यागराज के लिए बचा क्या है—केवल लौकिक मान-सम्मान, राजा महाराजाओं का आश्रय और पार्थिव निधि का प्रलोभन। त्यागराज असंदिग्ध स्वर में कहते हैं कि ये सब उनके लिए अभीष्ट नहीं हैं। अभीष्ट तो केवल परमेष्ट और प्रेष्ठ प्रभु की परम भक्ति का राज-पथ है जहाँ पर उनको उनकी रामरत्नमालिका की सुमधुर पदनिधि अनायास ले जाएगी। बस, इसी का त्यागराज को भरोसा है। यही उनकी सच्ची पदनिधि है जिसके सामने सारे संसार का राज्य नगण्य है।

यद्गत्वा न निवर्तंते तद्धाम परमं मम।

परमज्योति में लीन

"पूणमदः पूर्णमिदम्"

त्यागराज की आध्यात्मिक साधना जितनी परिपक्व और परिणत होती चली, उनका शरीर उतना ही शीर्ण और उनकी पार्थिव वासनाएँ उतनी ही परिक्षीण होने लगीं। सात साल की अवस्था में वे अपने जन्मस्थान तिरुवारूर छोड़ कर तिरुवैयार के पचनद क्षेत्र में आ बसे और तब से केवल कांची यात्रा को छोड़ कर और कभी बाहर नहीं गये। अपने आप में और अपने आप से परितुष्ट (आत्मन्येवात्मना तुष्ट) उनका सरल सात्विक जीवन धीरे-धीरे निराहारी और विषयों से विनिवर्तित हो चला। जब वे अठत्तर साल के हो गये, उनकी पत्नी कमलांबा का देहांत हुआ। बुढ़ापे में पत्नी के वियोग ने उनको वैराग्य की ओर पहले से अधिक प्रेरित किया। सच्चे अर्थों में वे प्रभु-पद की ओर उन्मुख और अग्रसर होने लगे।

एकादशी के दिन त्यागराज के यहाँ भजन-कीर्तन का विशेष कार्यक्रम हुआ करता था। रातभर भगवान के गुणगान में कई मधुपूर्ण क्षण व्यतीत होते थे। जिस वर्ष उनकी पत्नी का देहांत हुआ था, उससे अगले वर्ष पुष्य शुक्ला दशमी की रात को त्यागराज ने एक अनोखा सपना देखा था। प्रभु रामचन्द्र किसी पहाड़ के ऊपर विराजमान थे और अगल-बगल में उनके आत्मीय अनुचर चंवर डुला कर उनकी सेवा शुश्रूषा में तत्पर थे। इस प्रकार किसी भद्राचल पर प्रतिष्ठित राजभद्र की मंगलमय मूर्ति को देख कर त्यागराज का भावुक मन पुलकित हो उठा था। उनके नयन आनन्द के आँसुओं से आप्लावित हो गये। वे अपने प्रभु से बहुत कुछ कहना चाहते थे, पर गद्गद् कंठ से कुछ कहते नहीं बना। उनकी दशा 'नेकु कही बैननि अनेक कही नैननिसों, रही सही सोऊ कह दीनी हिचकीनि सों' जैसी हो गयी। पर सर्वांतर्यामी सर्वज्ञ प्रभु सब कुछ समझ गये। त्यागराज को आश्वासन मिला कि दस दिन के अन्दर उनको प्रभु का सान्निध्य मिलने वाला है। सर्वात्मा के साथ जिस सारूप्य की सिद्धि के लिए संत ने आजीवन स्वर साधना की, वह

हथेली में आंवले की तरह अनायास आ जुटा तो उन्होंने अपने को धन्य समझ लिया।

इस एकांत अनुभूति को अगले दिन एकादशी भजन के प्रशांत क्षणों में उन्होंने अपने शिष्यों के सामने रखा और कहा कि दस दिन के बाद माघ कृष्णा पंचमी के दिन सब लोग उनके यहाँ आकर प्रभु के कीर्तन में सम्मिलित हों। माघ कृष्णा चतुर्थी के दिन उन्होंने परम हंस ब्रह्मेंद्रानंद स्वामी से संन्यास की दीक्षा भी ग्रहण की। स्वामी जी ने त्यागराज को संन्यास की दीक्षा देने में पहले संकोच प्रकट किया क्योंकि निरंतर नाद साधना से जीवन्मुक्त हुए भक्त को संन्यास की दीक्षा की कोई आवश्यकता नहीं थी। फिर भी त्यागराज के प्रबल अनुरोध को वे अस्वीकार भी करना नहीं चाहते थे। उनको विधिवत् संन्यासाश्रम में प्रविष्ट कराया गया और नादब्रह्मानन्द का नया नाम भी दिया गया। संत त्यागराज एक दिन के लिए नादब्रह्मानन्द बन गये। वैसे तो वे सदा नाद ब्रह्म के आनन्द में ही लीन रहते थे। पर पार्थिव लीला समाप्त करने के पहले कुछ क्षणों के लिए वे अपने को तन मन से उसी परम सत्ता के चरणों में अर्पित कर 'सोऽहं' कहने का अधिकारी बनना चाहते थे। परब्रह्म राम के अनन्य आराधक नाद ब्रह्म प्रणव के प्रशस्त गायक और प्रभु की पदनिधि के एकांत सेवक और भावुक संत त्यागराज के ब्रह्मलीन होने के क्षण निकट आए।

पूर्वयोजना के अनुसार माघकृष्णा पंचमी (तेलुगु पंचांग के अनुसार पुष्य वदी पंचमी) के ब्राह्ममुहूर्त से लेकर संत त्यागराज का निवास श्रीनिवास के संकीर्तन से सस्वर और राग-सुधा-रस-निर्भर होने लगा। उस दिन के लिए त्यागराज ने विशेष रूप से दो गीतों की रचना की थी। एक राग बागधीश्वरी में और दूसरा राग मनोहरी में। 'बागधीश्वरी' में प्रणीत गीत विशेष रूप से उल्लेखनीय है :—

"परमात्मुडु वेलिगे मुच्चट बाग तेलुसु कोरे।
हरियट हरुडट सुरलट नरुलट
अखिलांड कोटुलट अंदरिलो
गगनानिल तेजो जल भूमयमगु
मृग खग नग तरु कोटुललो
सगुणमुललो विगुणमुललो
सततमु साधु त्यागराजार्चितुडिललो।"

(देखो देखो परख निरख कर परमात्मा का रूप शुभावह ।
हरि कहलाता हर कहलाता कहलाता है नर सुर भी वह ॥
रहता है अखिलांड भुवन में जन मन में जलथल में नभ में ।
पवन, प्रकाश चराचर जग में खग नग मृग तरु वीरुध सब में ॥
वही सगुण निर्गुण जड चेतन अंधकार आलोक सनातन ।
त्यागराज पद सदन परात्पर परज्योति वह पुरुष पुरातन ॥)

यह संत का संभवत: अंतिम गीत था जिसमें परिणतप्रज्ञ नादयोगी ने विश्व के कण कण में विश्वात्मा का विराट् रूप देखा और अपने को उसी बिराट् छाया में छाया हुआ पाया। जड़ और चेतन, अंधकार और आलोक सगुण और निर्गुण जीव और ब्रह्म सब में एक ही अखण्ड अनत और अविनश्वर सत्ता का साक्षात्कार कर वे उसी ज्योति में समा गए। सबको अपने में और अपने को सबमें पाकर वे अपने आपको पहचान गए और अपने में ही विलीन हो गए।

दिन की दूसरी पहर में जब भास्कर की किरणें नभोमण्डल को अपनी प्रखर दीप्ति से आलोकित करने लगीं तब वे अपने आप्त जनों के देखते ही देखते चिरंतन परमज्योति में सदा के लिए एकाकार हो गये। संत के इस प्रशांत निर्याण के समय उनके सभी शिष्य वहाँ पर उपस्थित थे और सबका सामूहिक संकीर्तन सुनते सुनते वे शून्य में समा गए। वही शून्य उनके लिए पूर्ण बन गया। अनत के सामने शून्य भी पूर्ण बन जाता है।

त्यागराज का सारा जीवन इसी सात्विक परिपूर्णता का साकार रूप था। वे जीवन में कुछ नहीं चाहते थ पर सारा जीवन उनको चाहता था। प्रभु को छोड़ कर ससार मे वे और किसी के नहीं बने, पर सारा संसार उनका बन गया था। वे कहीं नहीं जाते थे, पर सब लोग अपने आप पहुँच जाते थे उनके पास। जिस प्रकार सारी नदियाँ समुद्र में अपने आप आकर मिल जाती हैं और समुद्र निश्चल निर्मल और निष्कंप हो कर सबको आश्रय देता है और निरन्तर आत्मानन्द की आलोल और उत्ताल तरंगों से अपने अंतरंग की ज्वाला को शीतल बनाता रहता है, उसी प्रकार संत त्यागराज ने भी आजीवन अपने जीवन को इसी वेला की मर्यादा के अंतर्गत संयम और संतुलित रखा और अंत में परम शांति को प्राप्त कर गए।

"स शांतिमाप्नोति न कामकामी"

परिशिष्ट

सन्त त्यागराज के चुने हुए गीतों
का
हिन्दी रूपान्तर

क्रम

१. वन्दना

२. अर्चना

३. भावना

४. वेदना

५. चेतना

६. सांत्वना

७. साधना

वन्दना

१. श्री गणपति को भज रे भज मन

२. शिव शिव कह्रे भजरे मन

३. मां, गणेश की भांति मुझे भी

४. अंब तेरा एक ही अवलंब

५. त्रिपुर सुन्दरी, आज तुम्हारा

६. वन्दनं रघुनन्दनं

७. सदा भजेहं रामं श्यामं

८. तव दासोहं तव दासोहं

९. तुलसी दल से हुलसे दिल से

१०. शेष तल्पशायी की शोभा

११. चलो चलें श्रीरंगधाम को

(१)

श्री गणपति को भज रे भज मन,
श्रीपति के आश्रित जन पावन।
वाणीपति की पूजा पा कर
नाच उठे निक्वण के निस्वन।।
नारिकेल जंबूफल कटहल
सेवन कर बहु मधुर मधुर फल।
झनक झनक मुखरित कर मधुरव
हृदय कमल रख शिवपद मंजुल।।
ठुमक ठुमक पुलकित पल पल पर
निकले गणपति विनय नियत पद।
गणपति की पदगति में मिल कर
पुलक रहे हैं त्यागराज पद।।

(२)

शिव शिव शिव कह रे भज रे मन !
भय भंजक भव बंध निवारक।
काम क्रोध मोहादि विनाशक
पर नारी पर धन परिहारक।।
तज कर सब पाखंड मंदमति
नियमित मति बिल्वार्चन कर मन !

सुजन - समाज - संग - सुख पा कर
जगदीश्वर का भावन कर मन !
मान - मोह मन से निकाल कर
मानस - सुम अर्पित कर पावन।
आगम को अपना कर स्वर में
ढुलमुल बोली करो समापन।
परम भागवत पालक प्रभु का
त्यागराज सेवक गुण - गायक।
शिव शिव शिव कह रे भज रे मन
भय भंजक भव बंध निवारक ॥

(३)

माँ, गणेश की भाँति मुझे भी
अपना लो पालो संभालो।
तुमने अपना लिया नहीं तो
और कौन अवलंब सोच लो ॥
दिशाहीन को दिशा दिखाने
कामाक्षी का रूप लिया है।
सबका पाप मिटाने शंकरि !
तुमने तो संकल्प किया है ॥
उत्तम वर देकर अधमाधम
पतितों को उन्मत्त बनाया।
और तपस्वी साधु जानों को
संकट पर संकट उपजाया ॥

ठीक नहीं यह माँ पहले भी
धाता ने विनती की तुम से।
जनहित की शिव कामना लिए
जननी थी निज तेजो बल से॥
अब न विलंब करो हे अंबे
पराशक्ति तुम दया तरंगिणि।
इंदुकलाधरि ! राम सहोदरि !
त्यागराज की हृदय विहारिणि॥

(४)

अंब ! तेरा एक ही
अवलंब सच्ची बात मेरी।
बहन मन्मथ के पिता की
मांगता जग शरण तेरी॥
जगत की जननी भवानी
प्रिय कुमारी रजत गिरि की।
मैं अकिंचन मंदमति
असहाय आशा तव चरण की॥
समर में चंडी भयंकर
जलधि सम गंभीरता में।
काकली का धनी कोकिल
मंजुल स्वर मधुरिमा में॥
सकल मुद मंगल विधात्री
विकल मन की अविकल श्री।

प्रणव तन्त्री धर्म निलया
त्यागराज मनोन्मनी श्री ॥

(५)

त्रिपुर सुन्दरी ! आज तुम्हारा
दिव्य रूप नयनों ने पाया ।
देवि ! तुम्हारी करुणा का बल
या संचित पूजा-फल पाया ॥

श्रीकर वर नगरी धरती में
आदिपुरी कहलाती है यह ।
यहाँ तुम्हारी न्यारी सुषमा
महिमा गरिमा सकल शुभावह ॥

तव दर्शन लालायित शंकर
नारायण ब्रह्मादि देवता ।
शुक्रवार की शोभा के हित
जागरूक जग सकल जागता ॥

दीन दयामयि ! त्रिपुर सुन्दरी
नहीं तुम्हारी कोई समता ।
करता हूँ गुणगान तुम्हारा
जहाँ कहीं जम जाती जनता ॥

श्रांत चला आया नयनों की
प्यास बुझाने करुणापांगिनि ।
यहाँ मिली सुर बालाओं की
कवि वासर कमनीय पदध्वनि ॥

आज सफल बन गया भवानी !
जननी मेरा जन्म मनोन्मनि !
राशि मिली निर्धन को धन की
सूखी धरती को रस की धुनि ॥

कमल नयनि ! कमनीय तुम्हारा
दिव्य रूप है नयन रसायन।
त्यागराज की हृदय मनोहरि
काम जनक की बहन सनातन ॥

(६)

वंदन रघुनंदनं भव चंदनं जल बंधनं ।
सुन लिया विश्वास पाया, एहि पाहि समाश्रितं ।

हार मानूं न भक्ति छोड़ूं अनन्य यह तव दास है
होड है या हेय है यह सच बता तव योग्य है ?

राम देखिए क्षेम राखिए स्नेह से मिल जाइये
क्षेम कर हो नेम ऐसा राम गुण गण गाइए ॥

श्रीद इतना भेद मुझ से यह विवाद सही नहीं
श्रीश क्या मैं भार हूँ ? हृदयेश ! यह चर्चा नहीं ॥

मधुरसायन देहि रे वर देहि उत्तर देहि रे।
त्याग हृदयालय विराजी एहि वेग कृपाब्धि रे ॥

(७)

सदा भजेऽहं रामं श्यामं ।
जन मन जलनिधि सोमं सीतारामं जगदभिरामम् ।।

सरसिज नयनं सुन्दर वदनं अहिगण कीर्तित वृत्तम् ।
पापधराधर भंजनशीलं धन्य चरित्रमुदात्तम् ।।

धीरं भुवनाधारं सुगुणाकारं सुरपरिवारम् ।
सुजन विराजं नतसुर राजं स्तुतगजराजं राजम् ।।

श्रुति विनुताजं सुतरतिराजं त्यागराज-अधिराजम् ।
सदा भजेऽहं रामं श्यामं ।।

(८)

तव दासोऽहं तव दासोऽहं
दासोऽहं तव दाशरथे ।
वर मृदु भाषी, विरहित दोषी
नर वर वेषी दाशरथे ।।

परम पवित्र सुरेश्वर मित्र
सरोरुहनेत्र दयाशरधे ।
मुनि जन पाल, सुवर्ण दुकूल
पयोधर नील गुणांबुनिधे ।।

निरुपम शूर, सनाथ मुझे कर
तू मेरा वर दाशरथे ।
इनकुलधन ! विनती सुन मेरी
अब न बिसरना दाशरथे ।।

जग में तुझ-सा देव न तेरे
चरण शरण अब दाशरथे।
राग रहित निगमागम निगदित
त्यागराज नुत दाशरथे ॥

(९)

तुलसी दल से हुलसे दिल से
बार बार बरसों प्रभु पद का।
अर्चन करता हूँ निशिवासर
परम पुरुष वरणीय वरद का॥
सरसीरुह पुन्नाग मल्लिका
चंपा कुरवक पाटल सुरभिल।
सुमनों की माला अर्पित कर
करता हूँ कुसुमार्चन अविरल॥
पर सुविरल है तुलसीदल का
अर्चन अति रमणीय मनोहर।
अवधनाथ को त्यागराज के
स्वामी को रघुवर को प्रियतर॥

(१०)

शेषतल्पशायी की शोभा
मन कसे अवगत कर पाए।

निरख नहीं निखरे जिनके दृग
सुनयन भी अनयन कहलाए ॥

जलधर सम नीलाभ देह को
मोहममी मधुराकृति जिसने ।
देख भुला न दिया अपने को
देह गेह पाया क्यों उसने ।

तुलसीदल मल्ली कमलों से
प्रभु के चरण सरोज सजा कर ।
किया नहीं कुसुमार्चन जिसने
कर युग उसने पाया क्यों फिर ॥

त्यागराज के पालक प्रभु की
जो न करे स्तुति सियाराम की ।
उसकी रसना की पद रचना
वृथा, नहीं वह किसी काम की ॥

(११)

चलो चलें श्रीरंगधाम को
देख लें सखी ! रंगनाथ को ।
सीतापति कहते हैं उसको
रसशेखर राजाधिराज को ॥

स्वर्णांचल शाटी परिवेष्टित
कुंडल युग नयनाभिराम को ।
लहराती तरुणाई से युत
द्युतललाम को परंधाम को ॥

इंदुकला को निन्दित करने
वाले सुभग मुखारविंद को।
मृदुल मधुर भाषी करुणामय
मुग्ध मनोहर रामचन्द्र को॥

सकल धरा के पालक विभु को
निगमागम संचरणशील को।
चलो चलें देखें सब मिल कर
त्यागराज हृदयालवाल को॥

अर्चना

१. अर्चन कैसे करूँ तुम्हारा

२. जन्म वही रे मन मानव का

३. प्रभु पद की सेवन विधि

४. सेवा हित प्रस्तुत है सेवक

५. राम परम भट्टारक

६. भज रे भज मन सात स्वरों को

७. जय हो जय हो राम तुम्हारे

८. जय जय मंगल रामचंद्र का

९. जगदानंद विधायक

(१)

अर्चन कैसे करूँ तुम्हारा
समझ नहीं पाता जब तुम को।
हरि समझूं या हर समझूं
या अज समझूं परमेश्वर तुम को।
राजीवी नारायण का जप
माजीवी है जप महेश का।
जाने जो बड़भागी इसको
'त्यागराज' अनुरागी उसका।

(२)

जन्म वही रे मन ! मानव का।
नाम-सुमन अर्पित कर करता अर्चन नित माधव का।।
नाद स्वर नव रत्न जटित शुभ वेदी पर वरमति को।
स्थापित कर मानस के स्वर्णिम आसन पर रघुपति को।।
भज रे भज मन ! परम पुरुष को लीला रत सन्तुत को।
त्यागराज के मन-मंदिर के मंडन कर पद युग को।।

(३)

प्रभु पद की सेवन विधि कुछ तो
मुझे बता दो भेद खोल कर।
प्रभु की दोनों ओर खड़े हो
सीता लक्ष्मण नयन मनोहर ॥
ताराधिप शोभा युत सीता
प्रभुपद युग को छू न रही है ?
प्रभु का नाम जाप कर लक्ष्मण
अपने पन को खो न रहे हैं ?
या दोनों मन ही मन प्रभु की
सुधि सरसी में लीन बहे हैं।
कहो बहन सीता भई लक्ष्मण
कैसे प्रभु को रिझा रहे हैं ॥

(४)

सेवा हित प्रस्तुत है सेवक
कभी भुलाना नहीं दयालो।
करता हूँ गुणगान सदा प्रभु
कभी कृपा कर मुझे बुला लो ॥
बजरंगी बहिरंग द्वार पर
सावधान हो भले खड़े हों।
आगे पीछे तीनों भाई
चंवर डुलाते क्यों न खड़े हों ॥
पास प्यार से भरी गोद में
जनक सुता बैठी न भले हो।
श्रीचरणों की सेवा के हित
त्यागराज पर भी करुणा हो ॥

(५)

राम परम भट्टारक अपने
यहाँ मुझे कर लो परिचारक।
सेवक मैं आज्ञा का पालक
अशुभ निवारक शुभ संधायक॥

पुलकित रोम बने दृढ़ कंचुक
काम क्रोध मद का परिहारक।
रामभक्त की मुद्रावाली
पट्टी मेरा बने प्रसाधक॥

रामनाम बन जाए मेरा
खड्ग सकल कलिकलुष विनाशक।
त्यागराज मुद मंगल दायक
प्रभु का मैं बन जाऊँ सेवक॥

(६)

भज रे भज मन सात स्वरों को
भव्य रूपसी भामिनियों को।
नाभि हृदय की कंठ नासिका
रसना की स्वर वासिनियों को॥

वेदत्रय गायत्री स्वर में
मुखर मधुर मधु मंजरियों को।
त्यागराज के मानस सर में
सदा सुशोभित सुन्दरियों को॥

(७)

जय हो जय हो राम तुम्हारे
नाम रूप का जय मंगल हो।
पवन तनय कर युग परिसेवित
पद सरजिज का जय मंगल हो॥

पंकज नयनी जहाँ विराजित
तव शुभांक का जय मंगल हो।
विमल धवल मुक्ताहारों से
विलसित उर का जय मंगल हो॥

इंदुकला सकुचाए जिसमे
मंदहास का जय मंगल हो।
नारद मुनि प्रह्लाद भक्तजन
त्यागराज नुत जय मंगल हो॥

(८)

जय जय मंगल रामचन्द्र का
जय मंगल भव जलधि पौत का।
काम देव के जनक राम का
जय मंगल सीता समेत का॥

शिव कुमार के आप्त बंधु का
सवन परायण दयासिंधु का।
बृंदावन के साधु वृंदका
जय मंगल हो सत्य संध का॥

बृंदा के आनन्द विधायक
बृंदारक मुदमंगल दायक।
राज राज का जय मंगल हो
त्यागराज जीवन संधायक॥

(९)

जगदानन्द विधायक जय हे जय जय जनकसुतासुमनोहर।
दिनकर कुलभूषण सुगुणाकर दिविज विनुत राजाधिपशेखर॥

सुर तारक परिपूर्ण विमल विधु अमर कल्पतरु सकल पाप हर।
सुन्दर तर तन वचन मधुर तर दधि नवनीत हरण मायावर॥

श्रीनिवास सुरजन सुखदायक वेद सरोरुह सार प्रसारक।
खलजन मन भंजक खग वाहन कपि वंदित कविकुल रसपोषक॥

इंद्रनील कमनीय दिव्य तनु तरणि तरल विधु विमल नयन युग।
हरिहर विभु वागीश पितामह अप्रमेय अहिनायक तल्पग॥

शाप हरण मखत्राण परायण चरण श्रवण पुट मंत्र समीरित।
जनकसुताप्रिय अजवर दायक अखिल लोक भव लय संभावित॥

परम शांति युग अमित सुख प्रद अनुपम रुचि सुरुचिर तेजोमय।
सुरपतिसुत वरुणालय मदहर राग रक्त अभिराम कथाप्रिय॥

सुजन मनो जलनिधि विधु मंगल सुमन विमान यान संचारण।
सुरसांतक मारुत सुत संस्तुत असुर दर्प दारण चरणारुण॥

प्रणव नाद पंजर शुक मंजुल हरिहर अज रूपात्मक शंकर।
सकल कलाधर शक्र शत्रु हर करुणाकर शरणागत शुभकर॥

निर्विकार निगमागम निगदित निर्मलजन वांछित फल दायक।
सुर भूसुर सुख शांति सहायक असुर दलन हित शर संधायक ॥

त्यागराज सन्नुत मुनि कीर्तित पुरुष पुरातन चरित सनातन।
दशरथ नंदन श्रितजन पालन सतत परायण, विजित विरावण ॥

अगणित गुण मंडित शर खंडित सप्तसाल उत्ताल महीरुह।
सुर मुनि गण कवि जन मन मंदिर महित चरण अरुणाभ सरोरुह ॥

कनकांबर क्षीरांबुधिजा प्रिय त्यागराज संगीत सुधाकर।
जगदानंद विधायक जय हे जय जय जनकसुता सुमनोहर ॥

भावना

१. मधुर मधुर रघुवर तेरी छवि
२. राम कहो जय राम कहो
३. सीता माता, पिता राम है
४. अचल, नहीं चलते रघुनायक
५. सामदान का भेद दंड का
६. अखिल जगत का आश्रयदाता
७. कौन करे समता रघुवर की
८. स्वयं चले आए हो क्या तुम
९. एक हृदय हो घेरे हैं सब
१०. पता नहीं किस ओर बहे थे
११. श्याम मनोहर तेरी शोभा
१२. राम शर की त्राण गरिमा
१३. मेरु सन्निभ धीर को
१४. धन्य धन्य शबरी बड़भागिन
१५. सुनो सुनो हरिशंकर धाता

(१)

मधुर मधुर रघुवर तेरी छवि मन मोहक कनकांबरधारी।
नयन युगल पल पल निशिवासर अपलक निरख परख बलिहारी ॥

सुधा सार बरसाने वाली सुषमा रुचिर अपार अनूठी।
लख लख कर लावण्य पयोनिधि वैदेही सुध-बुध खो बैठी ॥

तरुण तरणि किरणाभ रुचिर तनु मणिमाला मंडित उर कंधर।
कमल नयन कोमल कपोल कल कनक मुकुट कमनीय कांत शिर ॥

सुरुचि मई के मुख से निकले कटु कठोर कंटकित वाक्य शर।
अभय वरद हरिचरण शरण में परिणत था ध्रुव गान मनोहर ॥

मृगमद तिलकित सुभग वदन में पाई खग ने पदगति न्यारी।
मारुति ने जब महिमा गाई पुलक उठी मिथिलेश कुमारी ॥

अरि वारिद पवमान चक्रधर करतलगत सुरतरु गुण सागर।
अभय हस्त वैदेही सहचर करुणाकर आनन्द सुधाकर ॥

चरण कमल अनुरागी साखी पवन तनय कर युग पद परिगत।
मंगल गिरि कैलास निवासी साखी शंकर रामनामरत ॥

शुक शौनक नारद हैं साखी धरा सुता गिरिजा हैं साखी।
प्रथित पराशर भक्त पुरंदर सुन्दरेश सुखजीवी साखी ॥

रामचन्द्र मुख चन्द्र निहारे त्यागराज नित प्रेम पुजारी।
मधुर मधुर रघुवर तेरी छवि मनमोहक कनकांबरधारी ॥

(२)

राम कहो, जय राम कहो, श्रीराम श्याम अभिराम कहो मन।
सगे सनेही जो रघुवर के उनका भाग्य सराहो रे मन ॥

(४)

कांत कपोल चूमने माँ ने कैसा तप किया न जाने।
'आ बेटा' कहने दशरथ ने कैसा क्या तप किया न जाने॥
अघा अघा कर सेवा करने लक्ष्मण ने क्या किया न जाने।
साथ चले रघुपति से पुलकित कौशिक ने क्या किया न जाने॥
पतित अहल्या तप कर कैसे रूपवती बन गई न जाने।
पावन कर छूकर अरराए शिव शर ने क्या किया न जाने॥
तनया को अर्पित करने क्या पुण्य जनक ने किया न जाने।
जनकसुता ने पिघल पिघल कर कर पाने क्या किया न जाने॥
त्यागराज विभु की स्तुति करने नारद ने क्या किया न जाने।
सब की योग तपस्या का फल जाने कौन, कौन पहिचाने॥

(५)

(३)

सीता माता, पिता राम हैं
सगे सनेही और कई हैं।
मारुत सुत, लक्ष्मण, अरिमर्दन
तात भरत खगपति भाई हैं॥
परमेश्वर ब्रह्मर्षि पराशर
शुक शौनक नारद लंबोदर।
वासव गुह गौतम सनकादिक
सकल भागवत भक्ताग्रेसर॥
सभी बंधुजन आप्त हमारे
साधु सन्त सबसे ममता है।
त्यागराज अपने कुल का यह
गौरव देख पुलक उठता है।

(४)

अचल, नहीं चलते रघुनायक
सकल कथा संधायक नायक।
सब का आदि नियामक साधक
है अनादि अंतक का अंतक ।।

संकल्पों का सूत्रपात वह
नहीं कल्पना से परिमल्पित।
शेषतल्पशायी श्रीसेवित
त्यागराज संगीत समाहित ।।

(५)

सामदान का भेद दंड का
सरस चतुर साधक रघुनायक।
शंकर का आराधक रावण
समझ नहीं पाया प्रभु का रुख ।।

हित की बातें बहुत बताई
कहा अयोध्या दे दूं शाश्वत।
शरणागत भ्राता को आश्रय
दिया राजपद पर कर स्थापित ।।

और अन्त में साम दान को
भेद नीति को देख निरर्थक।
नष्ट कर दिया दंड दनुज को
त्यागराज प्रभु ने भव तारक ।।

(६)

अखिल जगत् का आश्रय दाता
नारद जिसको नाद सुनाता।
नील मेघ-सा श्यामल होता
और कौन उसका सम होता॥

उसका ही गुंजन तन मन की
स्पंदन से रंजित कर देता।
उसका ही मृदु हास सुमन को
मधु रस से भर कर लहराता॥

उसका ही जीवन जलधर में
जीवन रस भर कर बरसाता।
उसकी ही पदनिधि के बल पर
त्यागराज उसका गुण गाता॥

(७)

कौन करे समता रघुवर की
करुणाकर की गुणावली की।
जीरा क्या समता कर सकता
शालिधान्य की हरियाली की॥

दिया ज्योति की, क्षुद्रनालिका
पावन कावेरी सरिता की।
तारे शशि की, नर मन्मथ की
सर सागर की जोड़ कहाँ की॥

धराधाम में सियारम की
समता कौन कहाँ कर पाए।
प्रभु तुम ही प्रतिरूप तुम्हारा
त्यागराज अनुपम गुण गाए ॥

(८)

स्वयं चले आए हो क्या तुम
प्राणनाथ मेरे परिपालक।
कमल नयन के मुख सरोज का
दर्शन ही जीवन फल दायक ॥
समझ लिया मन ही मन मैंने
तुम तो अंतरतम के गोचर।
इंद्रनील मणि की आभा से
उर पर मुक्ताहार संजोकर ॥
धनुष बाण तूणीर सजा कर
साथ लिए धात्री तनया को।
स्वयं चले आए हो प्रभु तुम
धन्य बनाने त्यागय्या को ॥

(९)

एक हृदय हो घेरे हैं सब
नित्यानंद सुखाकर को।
श्रीकर करुणा सागर निरुपम
चिन्मय श्रितचिंतामणि को॥

सुन्दरता में रति सीता की
दृग-पग में सुख लखमन को।
सुरुचिर वदन सरोज भरत को
ज्ञान रूप छवि शतुघन को॥

चरण कमल तरुणारुण में
सुख, मुद मंगलमय मारुति को।
निर्मल नित्यानन्द मुदावह
'त्यागराज' मति की रति को॥

(१०)

पता नहीं किस ओर बहे थे।
लहराते अलकों को लखकर नरवर मुनि किस ओर बहे थे॥

मुनि का लघु संकेत ग्रहण कर शिव शर सत्वर भग्न किया जब।
मारीची मद नष्ट भ्रष्ट कर निज महिमा को दर्शाया जब॥

देख देख हो दर्शन प्यासी अनुपम छवियुत अलकावलि को।
'त्यागराज' नुत पुरुषोत्तम के, मुख पंकज की भ्रमरावलि को॥

(११)

श्याम मनोहर तेरी शोभा।
शक्ति सकल तेरी ही आभा॥
तामस रहित बिमल गुण सागर।
रघुनायक भव जलधि सुधाकर॥
दुष्ट दनुज जन मद परिहारी।
निज जन हृदय निकत विहारी॥
इष्ट देव मेरा तू ही है।
त्यागराज तू और नहीं है॥

(१२)

राम शर की त्राण गरिमा
क्या बखाने दीन जन मन।
कामदास दशास्य का बल
हर चुका जब धीर लछमन॥
देखकर विश्रांत रिपु को
लगे रावण धी जलाने।
मेघनाद लगे दलों में
समय पाकर जोश भरने॥
तब खड़े कोदंड को ले
हाथ में रणभूमि में स्थिर।
ज्या-स्वनों के बीच निकले
वज्र-से त्यागेश के शर॥

(१३)

मेरु सन्निभ धीर को
रघुवीर को दातार को।
देख लें दृग सार से भवसार के
सुख सार को॥
नीर जलधर को निराली
चाल तेरी सोहती।
मचलने की शान है लासान
जग को मोहती॥
तिलक विलसित भाल पर ध
मधुमयी घुँघरालियाँ।
चिबुक की लघु पालियों से
खेलती अठखेलियाँ॥
कनक कुण्डल हार भूषण
कलित वपु के ध्यान में।
त्यागराज विभोर हैं
रघुवीर के गुण गान में॥

(१४)

धन्य धन्य शबरी बडभागिन
भाग्य सराहूँ कितना उसका।
जग में कितने हैं वेदांती
भला कौन गुण गाए उनका॥
कितनी वनिताएँ न बनी हैं
जपतप से परिपूत महोज्ज्वल।
पर शबरी का भाग्य भाग्य है
जिसे नयन का मिला परम फल॥

सजल नयन पुलकित तन प्रभु का
चरण कमल धोकर सेवन कर।
मीठे मीठे फल चुन चुन कर
प्रभु को अपने हाथ खिलाकर ।।
धन्य बन गई साध्वी शबरी
अतिथि बना रघुनायक जिसका।
भव बंधन से मुक्त बन गई
त्यागराज गाए गुण उसका ।।

(१५)

सुनो सुनो हरिशंकर धाता
बने राम गुण के व्याख्याता।
राजा का बेटा यह कैसे
बना सकल जग का संधाता ।।
सोच सोचकर हार गए सब
मिटा न संशय, बढ़ा कुतूहल।
अपने गुण सारे पलड़े में
डाल तोलने लगे ध्यान से ।।
पर सुगुणाकर रामचन्द्र के
दम शम गुरुतर बने माम से।
तब जाकर समझे अज हरि हर
दशरथ का यह तनय न केवल ।।
मूर्तित्रय कीर्तित रघुनन्दन
त्यागराज की पूजा का फल।

वेदना

१. राम जगदभिराम मुझ पर

२. मंद मंद मुसक्यान मनोहर

३. कहाँ गया तेरा वह भुज बल !

४. कहा किसी ने कैसे तुम को !

५. कहाँ कहाँ खोजूं मैं तुमको ?

६. सच्ची बात बता रे मन तू !

७. क्यों प्रभो करुणा तुम्हारी

८. उचित क्या रघुराम मुझको

९. इतना मुझे खिझाते क्यों प्रभु !

१०. छिपा रहे हो क्यों प्रभु ! करुणा

११. भार संभाल सकोगे मेरा

१२. एक बार दिखलाए मुखड़ा

१३. कहते हो तुम कहीं कभी कुछ

१४. दयाहीन निर्दय रघुनन्दन !

१५. किस माई का लाल मुझ-से

(१)

राम जगदभिराम मुझ पर, क्यों न आई दया अब तक ।
चींटियों में शिव रमेश, विरिंचियों में व्याप्त भावुक ॥
प्रेम तेरा भुवन तारक, नेम तेरा लोक पालक ।
मैं न यश की लालसा से जनन ऋण का हुआ भाजक ॥
दर्प से न किया कभी कुछ दुरित कार्य प्रमाद कारक ।
पर न क्यों प्रभु दया आई जानकी के प्राण नायक ॥

(२)

मंद मंद मुसक्यान मनोहर
सुन्दर मुख दिखला दो रघुवर ।
अकुलाए नयनों का संभ्रम
परख निरख कर आओ सत्वर ॥
गिरिधारी दरबार तुम्हारा
भरा पड़ा है सुधी जनों से ।
क्या तुमसे कुछ कहा किसी ने ?
फिर ऐसे तुम भूले कैसे ॥
क्या खगराज तुम्हारी आज्ञा
पाकर मौन धरा बैठा है ।
या वैसे ही कहा धरातल
दूर बहुत वह यहाँ कहाँ है ॥
अखिल लोक पालक रघुनायक
और कौन है आश्रय दायक ।
अब न सहा जाता तज धरना
त्यागराज दुख सहे कहाँ तक ॥

(३)

कहाँ गया तेरा वह भुजबल
युग बीते अवलोके जग को।
आदिदेव। करिवरद। भक्तजन
तरस रहे हैं लखने उसको।।

कर में तेरे चमक दमकने
वाले शर की भूख मिटी क्या ?
रुधिर पान कर खर मुरारि का
हुए बहुत दिन प्यास बुझी क्या ?

सजल वेदना जग की सुन कर
जातरोष तू हुआ नहीं क्यों ?
विनती जग की सुन तज निद्रा
योगमयी न दिखाता मुख क्यों ?

पता चला कि नहीं क्या अब तक
जन मानस अनियत निर्दय है।
त्यागराज के स्वामी जग को
सजग बना दे, अभी समय है।।

(४)

कहा किसी ने कैसे तुम को
प्रणतपाल आश्रित जन वत्सल।
शंकर जन संकट हर कह कर
किसने तुम को किया मनोज्ज्वल।।

दया नहीं आई है अब तक
मेरे ऊपर चिर सेवक पर।
स्मरण मनन कर मन में छवि को
घोल घोल कर पिघल पिघल कर ।।

कर युग पद युग उर ललाट से
घुटनों के बल पर प्रणाम कर।
बार बार शरणागत बन कर
मांगी करुणा, पर न मिला वर ।।

फिर भी सारा जग कहता है
आश्रित जन मंदार दयामय।
पंचनदीश बता दो अब तुम
समझा दो वर दो करुणालय ।।

(५)

कहाँ कहाँ खोजू मैं तुम को
हार गए जब चतुरानन भी नहीं कहीं पर पा कर तुम को ।।

मन मलीन आचरण हीन मैं परम भक्त कहलाता फिरता।
कैसे मैं प्रभु का श्रीपदयुग देख नयन पावन कर सकता ।।

(६)

सच्ची बात बता रे मन! तू
किस में सच्चा सुख है?
रघुपति की सन्निधि या भव निधि–
किस से मिलता सुख है?
दूध दही नवनीत रसों का
स्वाद तुझे हितकर है?
या कि सियावर-ध्यान-सुधा-रस
आत्मलोक हितकर है?
दम शम की निर्मल सरिता का
मज्जन देता सुख है?
या विषयों की कलुषित वापी
देती सच्चा सुख है?
ममता के भव बंधन से युत
नर कीर्तन में सुख है?
'त्यागराज' नुत परम पुरुष के
पद सेवन में सुख है?

(७)

क्यों प्रभो करुणा तुम्हारी
क्यों न बाहर प्रकट होती।
देख कर परिहास जग में
क्यों न तुम को दया आती॥

प्यार से सीता तुम्हारा
प्रिय वदन जब देख लेती।
याद रखकर बात में ही
कथा सारी बता देती॥

चरण छूकर भरत तेरे
मुख कमल में देख करुणा।
भूलता न कभी हमारी
भक्ति का भाष्यार्थ करना॥

नियम से उपचार कर जब
अनुज लक्ष्मण मुस्कुराता।
त्यागराज पदावली की
बात ही वह किया करता॥

(८)

उचित क्या रघु राम मुझ को
देख कर मुंह मोड़ लेना।
आप को शोभा न देता
जानकर मुंह फेर लेना॥

कमल लोचन सोच लो कैसे
कृपा की दास जन पर।
वे सगे कैसे बने फिर
मैं अकेला क्यों हुआ पर॥

समझ लो अभिमान मन में
तनिक हो तो अब संभालो।
दीन जन मंदार आश्रित
जन परायण अति कृपालो ।।

गान लोल सदा तुम्हारा
गान करता दीन जन यह।
त्यागराज कृपाभिलाषी
प्रभु कृपा बरसे शुभावह ।।

(९)

इतना मुझे खिझाते क्यों प्रभु !

मैं तेरा प्रिय भक्त रिझाता
गा गाकर साकेत महाप्रभु !
कहाँ चलूं किस किस से मिल लूं
कैसे अपनी व्यथा सुनाऊँ ।।

ताल मृदंग राग रागिनियाँ
कब तक ऐसे साज सजाऊँ।
अब न सहा जाता प्रभु मेरा
मन पल पर भी मान न पाता ।।

बिनती सुनकर त्यागराज की
कुल बल तज आ जा बन त्राता।

(१०)

छिपा रहे हो क्यों प्रभु मेरे !
तुम से छिपता नहीं छिपाए।
सकल सराचर जग में फैले
तुम से कैसे छिपे छिपाए ॥

दिनमणि शशि हैं नयन तुम्हारे
पर से पर परमात्मा हो तुम।
अंतरंग को खोज खोज कर
पाया ठीक ठिकाने 'सब तुम'।

मन में और न ठौर किसी का
एक तुम्हारा रूप समाया।
आया हूँ शरणागत बनकर
त्यागराज सब कुछ तज आया ॥

(११)

भार संभाल सकोगे मेरा
समझ नहीं पाता तुम कैसे ?
कर्म कठोर किए अति दारुण
सुनने को मन करे न ऐसे।

खा पीकर जीवन भर पशु-सा
आवारा बन घूम रहा था ॥
गुण गाकर लोभी धनियों का
पापी पेट भरा करता था ॥

दुर्मतियों के साथ विचर कर
दुराचरण से दुष्ट बना था।
त्यागराज को पतित जनों के
प्राणनाथ का पता नहीं था।।

(१२)

एक बार दिखलाये मुखड़ा
इससे क्या तेरा कुछ बिगड़ा।
अपना अपना भाग्य मानकर
कभी विभव हित किया न झगड़ा।।
वर क्या माँगूँ अवसर पाकर
दर्शन करना मात्र मनोरथ।
अनघ सुन्दराकार मनोहर
विदेह तनयाचरित प्रणयपथ।।
सुरसमाज सारा तज तेरा
शरणागत बन गया कृपालो।
त्यागराज की बिनती सुनकर
आ जा अन्तर का पट खोलो।।

(१३)

कहते हो तुम कहीं कभी कुछ
कभी कहीं कुछ और बताते।
चकराता है मन मेरा, पर
राम नहीं बनता बतियाते।।

नन्हें मुन्नों सा बहलाकर
कभी पालने में दुलराते।
कभी रुलाते छेड़ छाड़ कर
गालों पर घुटकी छिड़काते।।

कभी दण्ड देते हो अपने
जीवों को चिर जीव बनाते।
अपनों का आंतर्य समझ कर
अणु अणु का आनन्द बढ़ाते।।

जो जैसा भजता है उसको
उसी रूप में मिलते हो प्रभु !
भक्ति भाव के भागी अपने
त्यागराज को अपना लो प्रभु !

(१४)

दयाहीन निर्दय रघुनंदन
अकथनीय आनंद निकंदन।
पुलकित होता मन सुमिरन से
सरस नयन बनते दरसन से।।

पद युग पर दृग युग रम जाते
अपनापन सब कुछ भुलवाते।
मैं तेरा जब बन जाता हूँ
जग सारा तृण-सम पाता हूँ।।

चिंता दूर कराती मेरी
पार कराती आशा तेरी
त्यागराज को सचमुच अपना
सखा मान कर नहीं बिछुड़ना ॥

(१५)

किस माई का लाल मुझ-से ढीठ को संभाल ले।
बार बार बिसार कर जो वासना में जा मिले ॥

मन वचन से दूर तेरा वास आस न पास है।
श्री सरोरुह वासिनी के पास तेरा वास है ॥

सकल जन मन सदन तेरा पर मुझे न पता चला।
व्यर्थ के बकवास में सत्संग सुख भी खो चला ॥

अर्थ वैभव लालसा में अकड़ कर चलता रहा।
उदर पोषण के लिए सब की कृपा पाता रहा ॥

मन प्रसन्न सुखी रहा तन बस यही जीवन रहा।
छल कपट से कामिनी को जाल में लेता रहा ॥

स्वर सुधा का सार दे कर सुन्दरी का सुख लिया।
मूढ़ मति ने भक्त का रसलेश भी न समा लिया ॥

कामिनी गृह तनय धन की कामना में भूल कर।
खो दिया पदकमल का अनुराग मंगल मोद कर ॥

विमल वदन सरोज पर अनुराग अटल नहीं रहा।
विभव अभिमानी जनों का संग ललचाता रहा ॥

ठोकरें खाता रहा पर लालसा बढ़ती रही।
सतत अपराधी रहा तन मति सदा चंचल रही॥

मनुज दुर्लभ जन्म पाया, पर नहीं था मैं सफल।
मोह मद मात्सर्य मदनावेश में खोया सकल॥

अग्र कुल में जन्म था पर आचरण अति क्षुद्र था।
साधना रसहीन थी, संकल्प अधम अभद्र था॥

संपदा सौभाग्य या फिर सती सुत सम्मान की।
नित नई चिंता सताती त्यागराज जहान की॥

चेतना

१. राम भक्ति की महिमा

२. द्वैत कहीं अद्वैत कहीं

३. मार्ग कोई भी न पाता

४. शांति केवल शांति ही सुख

५. ग्रह बल कुछ ही नहीं

६. मान नहीं सकता मैं प्रभुता

७. मन अपना स्वाधीन रहा तो

८. मेरा मन और कहाँ टिक पाए

९. सुख कितना वह कैसे जानें

(१)

राम भक्ति की महिमा का मैं
वर्णन करूँ कहाँ तक भाई।
दूर हटा कर भ्रम रखवाली
करती है पलकों की नाईं॥
स्वर्ग छोड़ कर रमा धरा की
तनया बन कर कैसे आई।
लक्ष्मण से अपने भाई की
परिचर्या किसने करवाई॥
सुमति भरत ने पल पल प्रभु को
पाने पलकें क्यों फैलाई।
शबरी की जूठन भी कैसे
मांग मांग कर प्रभु ने खाई॥
सोचो तो शशि शेखर ने भी
सीतापति की स्तुति क्यों गाई।
स्वयंप्रभा अबला तपस्विनी
अजरामर कैसे बन पाई॥
बंदर कैसे बड़े समुंदर
पार कर गए, क्या प्रभुताई।
ऊखल से जसुमति ने प्रभु को
बांध डांट कैसे बतलाई॥
त्यागराज दोषी ने कैसे
पल पल बढ़ती पदनिधि पाई।
राम भक्ति की महिमा का मैं
वर्णन करूँ कहाँ तक भाई॥

(२)

द्वैत कहीं, अद्वैत कहीं,
पर सुख किसमें मैं मानूं ?
अखिल जगत् साक्षी अंतरतम
यह मैं कैसे जानूं ?
समझा दो अब भेद खोल कर
कोई नहीं पराया।
गगन, पवन, भास्कर, धरती या
अन्य लोक हो छाया।
हरि शंकर विधि या फिर सुर हों
या हरिहर जन कोई।
सब में है प्रभु त्यागराज का
जाने कोई कोई ॥

(३)

मार्ग कोई भी न पाता।
राम ! तेरी भक्ति का सन्मार्ग कोई भी न पाता ॥
विचरते संसार भर में स्वप्न में आलाप करते।
नींद से उठ कर सवेरे शीत जल से स्नान करते ॥
भस्म काया भर लगाते, हाथ में माला घुमाते।
परप पावन जन कहाते, गांठ में धन बाँध लेते।
अर्थ ही आराध्य हो जब समझ लें परमार्थ कैसे ?
त्यागविभु ! संसार तेरी भक्ति को पहचाने कैसे ?

(४)

शांति केवल शांति ही सुख
सुख तभी जब शांति हो।
दांत हो वेदांत का
निष्णात हो या संत हो।।
घर सुखी परिवार हो
धन धान्य से भरपूर हो।
जप तपस्या पाठ पूजा
साधना संस्कार हो।।
भागवत का भाव हो
निगमागमादि रुझाव हो।
त्यागराज सदा समझता
शांति ही सुख शांति हो।।

(५)

ग्रह बल कुछ भी नहीं अनुग्रह
बल ही बल केवल रघुवर का।
विफल सभी ग्रह बन जाते हैं
सफल बने जब भजन सबल का।।
तेजोमय विग्रह रघुपति का
सकल पाप हर ग्रह संकट का।
आग्रह निग्रह और अनुग्रह
सोच समझकर सार सकल का।।

ध्यान करे जो राग सुधा रस
लीन धन्य पावन जन हरि का।
उसको क्या कर सकता ग्रहबल
त्यागराज साखी है इसका ।।

(६)

मान नहीं सकता मैं प्रभुता
दुराचरण के परायणों की।
तू मेरा धन धान्य देवता
अक्षय निधि धर्मात्माओं की।
सारस्वत सरसांतरंगिणी
वाणी को मैं सभा सदन में।
कैसे दूं अधमों को ? धन का
लोभ नहीं त्यागेश हृदय में ।।

(७)

मन अपना स्वाधीन रहा तो
मंत्र तंत्र से काम नहीं।
जब जाना तन आप नहीं है,
जप तप में कुछ सार नहीं।
तू ही जब सर्वस्व बना तो
आश्रम का फिर भेद कहाँ ?

विषय रहित मन सहज हृदय को
चिंता क्या गत आगत की।
राज राज राकेश वदन सुन
त्यागराज के अन्तर की।

(८)

मेरा मन और कहाँ टिक पाए।
श्री हरि! तेरी सुन्दरता इन आँखों में जब छाए॥
कानों में तव मधुर कथामृत भर भर कर लहराए।
पावन नाम प्रभो! मेरे मुख मुखरित हो नित भाए॥
मेरे नयन जहाँ भी जाएँ, तव दरसन ही पाएँ।
रविकुल तिलक चरण अनुरागी यह जन सदा कहाए॥
कपट वचन सारे प्रभु तेरे, मन मेरा ललचाए।
तू ही योग तपस्या का फल, त्यागराज नित गाए॥

(९)

सुख कितना वह कैसे जानूं?
कितना है, क्या है, कैसा है उसको मैं कैसे मन मानूं?
दमशम से संपन्न सियावर करुणाकर रघुवर पहिचाने।
और प्रेम के प्रथित पुजारी गिरिजावर शंकर भी जाने॥
स्वर-लय राग सुधा के रस में घोल घोल कर राम नाम की।
मिश्री को मिश्रित कर पाई रुचि नवीन कृति त्यागराज की।

सांत्वना

१. मैं रघुनाथ सनाथ अनाथ न

२. पाया मैंने आज रामधन

३. करुणालय कल्याण गुणालय

४. आओगे तुम अभी इसी क्षण

५. मांग लिया जिस जिसने

६. व्याकुल हैं यमराज बिचारा

७. बात बना ली रे मन अपनी

८. अदा करूं कैसे ऋण तेरा

९. धन्य धन्य शत शत बड़भागी

(१)

मैं रघुनाथ सनाथ अनाथ न।
निगमागम कोविद कहते हैं
तुम अनाथ अविगत अनिकेतन।
मैं न किसी की कृपा दृष्टि का
पात्र बना कहते हैं प्रियजन॥
लोकनाथ ने किया मुझे
जब श्रीसनाथ तब क्या उलझन।
पुरुष पुरातन जिसे पुरंदर
सदा हृदय के अंदर भजता।
अहिनायक पर्यंक शयन वह
त्यागराज का मानस भरता॥

(२)

पाया मैंने आज राम धन
पाया जो खोया सब पाया।
जन्म लिया दिनकर के कुल में
जग में सीतापति कहलाया॥
किया भरत लक्ष्मण रिपुसूदन
आप्त बंधुओं ने पद सेवन।
पवन तनय आराधित पद युग
सूर्यतनय वांदत शुभ आनन।

त्यागराज ने पाया प्रभु को
रामधाम पर पांच आयतन।
पाया जो खोया सब पाया
पाया मैंने राम रूप धन॥

(३)

करुणालय कल्याण गुणालय दशरथ वंश शुभोदय।
तरुण तरणिनिभ चरण विराजित आश्रित जन शरणालय।

असुर गर्वहर वितत गुणाकर बिनती सुन कर मेरी।
नहीं सुनी तो नाम धाम की गिनती फिर क्या तेरी॥

जनकनंदिनी प्रिय, जग तारक, जनक वाक्य परिपालक।
जलज नयन, जन हृदय, सनकनुत, सुर नर मुनि सुखदायक॥

वाद विवाद करो न बताओ साफ साफ छल जाल छोड़ कर।
करुणा तेरी छिप जाती है क्यों हमको भरमाकर॥

परप पुरुष, जन मन संचारी निगमागम अनुगामी।
चरण कमल कवि दरसाने का यह सुयोग है स्वामी॥

मायामय चंचल इस जग में और न कोई आशा।
काया तेरी, इठलाता मन पा कर यह संदेशा॥

पवन तनय परिमार्गित पदरति धनपति सन्नुत वेषी।
त्यागराज सेवित करुणानिधि सघन जलद सम भाषी॥

(४)

आओगे तुम जल्दी वहीं न जा कर रह जाओगे।
इतना मेरी सोंह बता दो तो फिर जा पाओगे ॥

पंथर गिरिधर तेरे अपने लोग अनेकों होंगे।
कहीं भुला कर बैठ गए तो हम क्या कर पाएँगे।

आँखें तेरा रूप निरखना चाहें तब न मिले तो।
आंसू उमड उमड कर नहरें लहरा कर वह जाते ॥

रघुनायक के आने में कुछ देर हुई तो मेरी
कुटिया सारी द्वार बसेगी तुझ पर ही बलिहारी ॥

परमानंद निधान निराली शय्या मुझे न भावे।
तुझ बिन सूनी, नहीं सुहाती, पल पल युग बन जावे।

तू परमात्मा, तुझे न जब मैं पा कर परवश होता।
करता है उपहास हमारा यह जग, रहा न जाता ॥

निष्ठा मेरी निरख उठे तव निर्मल भक्ति सहारे।
त्यागराज को अभयदान कर जलधि तले प्रभु मेरे ॥

(५)

माँग लिया जिस जिसने तेरे पास प्रभो क्या पाया ?
जन संसृति का तिमिर मिटाने भास्कर बन कर आया ॥

जनक नंदिनी प्राण प्रिया ने वन विहार वर माँगा।
पर पूरा निर्वासन पाया, पाया मूल्य महंगा ॥

असुर भामिनी शूर्पणखा ने तन माँगा मन दे कर।
नाक कटी उसकी, वही भागी भाई के घर रो कर॥
नारद के मन में भी उपजी इच्छा एक अनोखी।
पाई उसने नारी की छवि और साठ सुत साखी॥
दुर्वासा ने खाना माँगा अपच रोग से भागा।
सुत चाहा वसुदेव सती ने नंद बना बड़भागा॥
ब्रज बालाएँ भोली भाली न्यौछावर कर तन मन।
घर से कुल से पति के मन से अलग हो गई सिर धुन॥
पता चला अब कोई तेरा रीतिरिवाज़ नहीं है।
जब जिस पर जैसा दिल तेरा उसका भाग्य खुला है॥
इसी भरोसे रहता हूँ मैं कभी खुले दिल तेरा।
त्यागराज प्रभु की सम्मति से खिले सुमन यह तेरा॥

(६)

व्याकुल है यमराज बिचारा
देख भजन में लीन सुजन गुण
ध्यान परायण भक्त भागवत।
भीकर शूल दंडधर भट का
देख न कोई खास प्रयोजन॥
चिंतित है निरुपाय निरुत्तर
अंतक भी अवधेश परायण।
देखा तारक नाम राम का
दुरित जगत का हरता पल पल॥

मुनि अगस्त्य ने जैसे पल में
पी डाला था सागर का जल।
फिर सोचा था भूले भटके
इधर उधर कुछ होंगे दुर्जन॥
पर वे भी सुन त्यागराज के
गान बन गए तन मन पावन।
हार गए यमराज कहीं भी
नारकीय नागरिक न पाकर॥
त्यागराज की रामकथा की
रागसुधा से भरा चराचर।

(७)

बात बना ली रे मन! अपनी।
हित की बातें बहुत बखानीं, पर जुठला दीं सारी बानी॥
अवसर के अनुकूल वचन से आखिर अपनी बात बना ली।
अपनी मातु-पिता को तजकर व्रज को लीलास्थली बना ली॥
रंगनाथ गंगोद्भवकारी गान कला संधायक स्वामी।
गोपी जन हृदयांतर वासी लिया प्यार पर दी बदनामी॥
लुभा लुभा कर व्रज रमणी को नवां दिया पैरों पर जिसने।
माँ ने मुँह को चूम लिया तो मंद मंद मुस्काया उसने॥
मैंने सोचा भक्त परायण जग में करुणा रस बरसेंगे।
अनघ अजन्म जन्म के दाता भव बाधा को दूर करेंगे॥
रामचन्द्र रघुनायक मेरे प्रभु हरि अज सर्वांतर्यामी।
परनारी प्रिय घंघु सुभाषी वनज नयन गरुडाधिप स्वामी॥

राज राज वंदित सुमनोहर त्यागराज संकीर्तित कहकर।
वेंकटेश मणिकुंडल मंडित गाया मैंने बार बार पर॥

अवसर के अनुकूल वचन ही बना बना कर बात बना ली।
कहा भक्त जन की परिपाटी यही रही श्रद्धांजलि ले ली॥

रूठो मत सुख दुख सब सह लो मिलो नहीं दुश्मन से कहकर।
मुंह तक नहीं दिखाया इसने त्यागराज को यायावर कर॥

(८)

अदा करूँ कैसे ऋण तेरा
राम परम पावन प्रभु मेरा।
दूर दूर तक जीभर कर स्वर
पहुँचाया आशांत हमारा॥

दशरथ सुत ! रस भाव शिरोमणि
ज्ञान दान शेखर करुणाकर।
भक्ति मुक्ति रस भाव जहाँ पर
नहीं वहाँ देते पलकें भर॥

पुलकित कर सपने में पलपल
भरते हो आनंद वारिघन।
भक्ति मुक्ति कर त्यागराज के
गीत तुम्हारे रुचिर प्रसाधन॥

धन्य धन्य शत शत बड़भागी, सबको अंजलि, सबको प्रणाम।
इंदु धवल सुंदर मुख मंडल, परख परख निज मानस धाम।
परम पुरुष के भावन में नित निरखे परमानंद निधान।
सामगान मानस रस परवश धन्य धन्य मूर्द्धन्य महान्॥

जल संकुल मानस को निश्चल कर जो स्वच्छ रुचिर छवि पालें।
चित सरसिज वर चरण युगल पर, अर्पित कर अपने को भूलें॥

पतित परायण परम पिता का, तत्परता से गान करे जो।
अविचल गति अपने पथ चल कर, स्वर लय राग सुधा भर दे जो॥

हरिगुण गण की मणिमाला से, विलसित जिनके स्तर होते हैं।
स्नेह विवेक धनी जो जग में, करुणामृत नित बरसाते हैं॥

नवल मृदुल पदगति से विलसित, ललित रूप लावण्य सुधाकर।
सजल नयन पुलकित तन प्रमुदित, रसनिधि में खोए जो पाकर॥

सनक सनंदन शुक सरसिजभव, पवन तनय प्रह्लाद पराशर।
सुर किन्नर किंपुरुष लोकचर, नारद तुंबुर सूर्य सुधाकर॥

हरिसेवक शाश्वत यश भाजन परम भागवत पावन मुनि जन।
बाल कलाधर शेखर परिजन, ब्रह्मानंद रसामृत रत जन॥

प्रणतपाल प्रणप्राण रघूत्तम, नाम रूप प्रभुता लख तेरी।
उपजे जिनके शांत चित्त में, सच्ची मति सद्भक्ति घनेरी॥

वेद पुराण शास्त्र रामायण, पढ़ कर जो पहचाने षण्मत।
स्वरलहरी तैंतीस करोड़ों सुर अंतर कर दे मुखरित नित॥

भाव राग अनुराग परम सुख, भर दे मन को भजन गान से।
अजर अमर निरवधि सुख जीवी, त्यागराज रघुनाथ ध्यान से॥

परम प्रेम योगी स्वर योगी, त्यागराज-प्रभु पर अनुरागी।
राम नाम नव रस के भागी, धन्य धन्य शत शत बड़भागी॥

साधना

१. कहते हैं जो 'है वह' 'है वह'

२. नादामृत बन गया आज नर

३. नादलोल बन पाओ रे मन

४. नादयोग के साधक शंकर

५. स्वर लय राग प्रवीण मान कर

६. बिना भक्ति की गान कला का

७. इधर उधर क्यों चलता रे मन

८. अंतर का मत्सर पट खोलो

९. देखो देखो परख निरख कर

(१)

कहते हैं जो 'है वह' 'है वह'
वह तो उनके लिए सदा है।
अब तक जो कहते आए हैं
उनका कहना नहीं मृषा है।
दर्शन के मतवाले प्रभु के
हम को क्यों न दिखाई देते।
मधुर मधु रसागार मनोहर
मृदुल कपोल हमें ललचाते।।
तज कर मीठी नींद सुहानी
लिए हाथ में सुभग तानपुरा।
निर्मल मन सुस्वर युत मति से
अपना कर महती परंपरा।
नियत भजन कीर्तन करते हैं
नित्यानंद विधायक प्रभु का।
कृपा करो कारुण्य पयोनिधि
सुनकर कीर्तन त्यागराज का।।

(२)

नादामृत बन गया आज नर
राम बना कोदंड चाप धर।
शास्त्र पुराण और निगमागम
सब का मूलाधार नाद स्वर।।

नाद नाथ चरितामृत उसका
राग प्रधान चाप रघुवर का।
सात घंटिकाएँ हैं उसकी
स्वर सप्तक संसरण षड्ज का॥

दुर, नय, देश्य तीन गुण उसके
तीर निरत गति चलता उसका।
संगतियाँ स्वर संगत गति की
स्मितभाषित सीतामानस का॥

राम भद्र के भजन भाग्य का
भाजन जन रघुनाम तपोधन।
त्यागराज सचमुच बड़भागी
जिसे मिला प्रभु नाद रूप धन॥

(३)

नादलोल बन पाओ रे मन!
ब्रह्मानंद विशुद्ध विनिर्मल।
चारु चार फल देने वाले
सात स्वरों के राग रसोर्मिल॥

हरि ने हर ने चतुरानन ने
और देवताओं ने जिसको।
भजकर पाया परमेप्सित को
त्यागराज ने पाया उसको॥

(४)

नादयोग के साधक शंकर
नारायण वाणीपति रे मन।
नाद साधना के बल पर ही
वेदों का भी हुआ उन्नयन॥

चारों वेदों से अतीत बन
विश्वंभर कहलाए सारे।
मंत्र यंत्र तंत्रात्मक महिमा
पाई सबने नाद सहारे॥

मंत्रपूत सिद्धार्थ सभी जन
तंत्री राग लयालय भाजन।
वंदनीय हैं त्यागराज के
ये स्वतंत्र स्वर योगी पावन॥

(५)

स्वर लय राग प्रवीण मान कर
चलते हैं कुछ लोग अकड़ कर।
वह क्या जाने जाति मूर्च्छना
स्वर का सार रहस्य सविस्तर॥

प्रणव नाद ही पार्थिव तन में
विविध नाद उपजाता कैसे।
इसका भेद न जाने जब तक
नाद भेद पहिचाने कैसे॥

(६)

विना भक्ति की गान कला का
ज्ञान सही संधान न देता।
नंदीश्वर नटराज पवन सुत
नारदादि जिसके संघाता।।

मुनि अगस्त्य मातंग महामुनि
सभी बने इसके उद्गाता।
कौन सही है कौन नहीं है
सही ज्ञान जिससे मिल पाता।।

जिससे यह संसार हमारा
मायामय निस्सार दीखता।
त्यागराज कामादि शत्रुगण
जिससे सबको सहज जीतता।।

(७)

इधर उधर क्यों चलता रे मन।
कोटि कोटि नदियां मिल जुल कर
धनुष कोटि में बहलाती मन।
सफल साधना उनको है जो
अपलक नयन युगल संजोए।
श्याम रुचिर सुमनोहर भास्वर
लेखामय रेखा छवि पाएँ।
सुर सरिता उपजी प्रभु पद से
चरण मुखर नूपुर रव सुन कर।

काबेरी बन बही बह चली
रंगनाथ पद निधि फिर लख कर।
त्यागराज रघुनाथ गान में
उमड़ उमड़ कर स्वर सरिता बन।
राग सुधा बहलाता बहता
उछल उछल कर चलता रे मन

(८)

अंतर का मत्सर पट खोलो
वेंकट पति अधिपति तिरुपति के।
घर कर अंदर भगा रहा है
सब साधन भव मोचन गति के ।।

भरी परोसी पत्तल पर ज्यों
मक्खी आ कर टपक पड़ी हो।
मधुसूदन के ध्यान समय में
मलिनांचल की याद पड़ी हो ।।

तरस तरस दाने को मछली
कील जाल में फंसी पड़ी हो।
उज्ज्वल कांति पुंज के पग पर
अवरोधक दीवार खड़ी हो ।।

बिछा जाल देखा न मृगी ने
जा कर उसमें कूद पड़ी हो।
त्यागराज के मद मत्सर का
पट खोलो जितनी जल्दी हो ।।

(९)

देखो देखो परख निरख कर परमात्मा का रूप शुभावह।
हरि कहलाता हर कहलाता कहलाता है नर सुर भी वह ।।

रहता है अखिलांड भुवन में जन मन में जलथल में नभ में।
पवन, प्रकाश चराचर जग में खग नग मृग तरु वीरुध सब में।

वही सगुण निर्गुण जड चेतन अंधकार आलोक सनातन।
त्यागराज पद सदन परात्पर परंज्योति वह पुरुष पुरातन ।।

अकारादि कृति-सूची

क्र. सं.	हिन्दी रूप	तेलुगु मूल
१.	अन्तर का मत्सर पट खोलो	तेरदीयगरादा
२.	अंब, तेरा एक ही अवलंब	अंब निनु नम्मिति
३.	अखिल जगत् का आश्रयदाता	नारद गान लोल
४.	अचल, नहीं चलते रघुनायक	कदले वाडु गाडे
५.	अदा करूं कैसे ऋण तेरा	दाशरथी नी ऋणमु
६.	अर्चन कैसे करूं तुम्हारा	एवरनि निर्णयिंचिरि रा
७.	आओगे तुम अभी इसी क्षण	अंदुण्डकने
८.	इतना मुझे खिझाते क्यों प्रभु	चलमेलरा
९.	इधर उधर क्यों चलता रे मन !	कोटि नदुलु
१०.	उचित क्या रघुनाथ मुझ को	ओर चूपु चूचेदि
११.	एक बार दिखलाए मुखड़ा	एदुट निलचिते
१२.	एक हृदय हो घरे हैं सब	लेकना निन्नु
१३.	करुणालय कल्याण गुणालय	करुणा जलधी
१४.	कहते हो तुम कहीं कभी कुछ	अट्ट बलुकुदु
१५.	कहते हैं जो है वह	कद्दु कद्दनुवारिकि
१६.	कहां कहां खोजूं मैं तुम को	नेनेंदु वेदकुदु रा
१७.	कहां किसी ने कैसे तुम को	इललो प्रणतार्ति
१८.	कहां गया तेरा वह भज बल	एदि नी बाहुबल
१९.	किस माई का लाल मुझ-से	दुडुकुगल
२०.	कौन करे समता रघुवर की	राम नी समानमेवरु
२१.	क्यों प्रभो करुणा तुम्हारी	दाचुकोवलेना
२२.	ग्रह बल कुल भी नहीं	ग्रहबल मेमि
२३.	चलो चलें श्रीरंगधाम को	चूतामु रारे
२ .	छिप रहे हो क्यों प्रभु ! करुणा	मरुगेलरा
२५.	जगदानन्दा विधायक	जगदानंद कारक

क्र. सं.	हिन्दी रूप	तेलुगु मूल
२६.	जन्म वही रे मन मानव का	नामकुसुममुल चे
२७.	जय जय मंगल रामचन्द्र का	मा राम चंद्रुनिक
२८.	जय हो जय हो राम तुम्हारे	नी नाम रूपमुलकु
२९.	तव दासोहं तव दासोहं	तव दासोहं तव दासोहं
३०.	तुलसी दल से हुलसे दिल से	तुलसीदलमुल चे
३१.	त्रिपुर सुन्दरी ! आज तुम्हारा	सुन्दरि नी दिव्यरूपमुनु
३२.	दयाहीन निर्दय रघुनन्दन	दयगानि दयरानि
३३.	देखो देखो परख निरख कर	परमात्मुडु वेलिगे मुच्चट
३४.	द्वैत कहीं अद्वैत कहीं	द्वैतमु सुखमा
३५.	धन्य धन्य शत शत बड़भागा	एंदरो महानुभावुलु
३६.	धन्य धन्य शबरी बड़भागिन	एंतनि वर्णितुनु
३७.	नादयोग के साधक शंकर	नादोपासन चे
३८.	नाद लोल बन पाओ रे मन	नादलोलुडै
३९.	नादामृत बन गया आज नर	नादसुधा रसंबिलनु
४०.	पता नहीं किस ओर बहे थे	अलकलल्ललाडग
४१.	पाया मैंने आज राम-धन	कनुगोंटिनि
४२.	प्रभु-पद की सेवन विधि	प्रक्कल निलबडि
४३.	बात बना ली रे मन अपनी	साधिंचेने
४४.	बिना भक्ति की गान कला का	संगीत ज्ञानमु
४५.	भज रे भज मन सात स्वरों को	शोभिल्लु सप्तस्वर
४६.	भार संभाल सकोगे मेरा	एटुल ब्रोतुवो
४७.	मंद मंद मुसक्यान मनोहर	नगुमोमुगन लेनि
४८.	मधुर मधुर रघुवर तेरी छवि	कन कन रुचि रा
४९.	मन अपना स्वाधीन रहा तो	मनसु स्वाधीनमैन
५०.	माँ, गणेश की भाँति मुझे भी	विनायकुनि वलेनु
५१.	मांग लिया जिस जिस ने	अडिगिसुखमु
५२.	माग कोई भी न पाता	तेलियलेरु राम
५३.	मान नहीं सकता मैं प्रभुता	दुर्मार्ग चराधमुलनु
५४.	मेरा मन और कहाँ टिक पाए	निनुविना ना मदेंदु
५५.	मेरु सन्निभ धीर को	मेरु समान धीर

क्र. सं.	हिन्दी रूप	तेलुगु मल
५६.	मैं रघुनाथ सनाथ अनाथ न	अनाथडनु गानु
५७.	राम कहो जय राम कहो	श्रीराम जयराम
५८.	राम जगदभिराम मुझ पर	रामनन्नु ब्रोवरा
५९.	राम परम भट्टारक	बड़रीति कोलुविय्यवय्य
६०.	राम भक्ति की महिमा का मैं	अन्न राम भक्ति
६१.	राम शर की त्राण गरिमा	राम बाण त्राण
६२.	वंदनं रघुनंदनं	वंदनं रघुनंदनं
६३.	व्याकुल हैं यमराज बिचारा	विंतिस्तुन्नाडे यमुडु
६४.	शांति केवल शांति ही सुख	शांतमु लेक
६५.	शिव शिव शिव कह रे	शिव शिव शिव यन रादा
६६.	शेष तल्पशायी की शोभा	एन्नग मनसुनकु
६७.	श्याम मनोहर तेरी शोभा	श्याम सुन्दरांग
६८.	श्रीगणपति को भ[illegible] भज मन	श्रीगणपतिनि सेविंप रादटे
६९.	सच्ची बात बता रे मन ! तू	निधि चाल सुखमा
७०.	सदा भजेहं रामं श्यामं	रामं भजेहं सदा
७१.	सामदान का भेद दंड का	सरस साम दान
७२.	सीता माता, पिता राम हैं	सीतम्म मा यम्म
७३.	सुख कितना वह कैसे जानूं ?	इंत सौख्यमनि
७४.	सुनो सुनो हरि शंकर धाता	मुम्मूर्तुलु
७५.	सेवाहित प्रस्तुत है सेवक	उपचारमु चेसे
७६.	स्वयं चले आए हो क्या तुम	ननु पालिप
७७.	स्वर लय राग प्रवीण मान कर	वर रागलयज्ञुलु

56225
56225

Rs 5 50

PUBLISHED BY S. LAKSHMINARAYANA, I. A. S., EXECUTIVE OFFICER, T.T. DEVASTHANAMS.
PRINTED AT T. T. D. PRESS, TIRUPATI—C. 5,000